

JOTI JOURNAL

OCTOBER 2015 (BI-MONTHLY)



मध्य प्रदेश राज्य न्यायिक अकादमी

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर - 482 007

MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY
HIGH COURT OF MADHYA PRADESH, JABALPUR - 482 007

JOTI JOURNAL OCTOBER - 2015

SUBJECT- INDEX

सम्पादकीय 107

PART-I (ARTICLES & MISC.)

1	Photographs	109
2.	Hon'ble Shri Justice Gulab Singh Solanki, Hon'ble Shri Justice Tarun Kumar Kaushal and Hon'ble Shri Justice Bhagwan Das Rathi demit Office	111
2	स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 या एन.डी.पी.एस. एक्ट (भाग.2)	113
3.	एन.डी.पी.एस. एक्ट के तहत आपराधिक मामलों में जप्त संपत्ति की अभिरक्षा, विचारण पूर्व व पश्चात् व्ययन	124
4.	मृतक के अविवाहित होने पर गुणांक का चयन	137

PART-II (NOTES ON IMPORTANT JUDGMENTS)

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
------------	----------	----------

ACCOMMODATION CONTROL ACT, 1961 (M.P.)

स्थान नियंत्रण अधिनियम, 1961 (म.प्र.)

Sections 12 (1)(a) and 12(1)(f) – See Order 3 Rule 2 and Order 18 Rule 4 of the Civil Procedure Code, 1908

धाराएं 12(1) (ए) और 12(1)(एफ) – देखें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 3 नियम 2 और आदेश 18 नियम 4

224 418

ARBITRATION AND CONCILIATION ACT, 1996

माध्यस्थ और सुलह अधिनियम, 1996

Section 34 (2) – Setting aside of an award – An arbitral award may be set aside only if one of the conditions specified in section 34 (2) of the Act is satisfied.

When the parties have arrived at a concluded contract and acted on the basis of those terms and conditions of the contract then substituting new terms in the contract by the arbitrator or by the court would be erroneous or illegal.

धारा 34 (2) – एक अवार्ड को अपास्त करना एक माध्यस्थ अवार्ड केवल धारा 34 (2) अधिनियम में दर्शाई शर्तों में से कोई एक शर्त के (प्रमाणित या) संतुष्ट हो जाने पर ही अपास्त किया जा सकता है।

जहाँ पक्षकार एक concluded contract या अंतिम संविदा पर पहुंच जाते हैं और उसकी शर्तों एवं दशाओं के आधार पर कार्य करते हैं वहाँ माध्यस्थ द्वारा या न्यायालय द्वारा नई शर्तें संविदा में प्रतिस्थापित करना त्रुटिपूर्ण या अवैध होगा।

222 417

Section 34 (2) – Whether provision of section 14 of the Limitation Act, 1963 will apply on an application under section 34 of the Act of 1996? Held, Yes.

धारा 34 (2) – क्या धारा 14 परिसीमा अधिनियम, 1963 के प्रावधान धारा 34 अधिनियम, 1996 के आवेदन पर लागू होंगे? अभिनिर्धारित किया गया, हाँ।

223* 417

CIVIL PROCEDURE CODE, 1908

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

Order 3 Rule 2 and Order 18 Rule 4 – Whether the power of attorney holder, who is also son of the landlord, can depose in place of landlord for factum of *bona fide* need?

Fact of non-payment of arrears of rent – May be within the personal knowledge of landlord or it may be within the knowledge of the power of attorney-holder.

आदेश 3 नियम 2 और आदेश 18 नियम 4 – क्या मुख्तयारनामा धारक, जो कि मकान मालिक का पुत्र भी है, मकानमालिक के स्थान पर, सद्भाविक आवश्यकता के तथ्य के लिये, कथन दे सकता है।

बकाया किराया भुगतान न करने का तथ्य मकान मालिक के व्यक्तिगत ज्ञान में हो सकता है या मुख्तयार नामा धारक के ज्ञान में हो सकता है।

224 418

Order 7 Rule 11 – Where the issue of limitation is a mixed question of fact and law, it can be decided only after framing of issues and recording of evidence – Plaintiff cannot be rejected under Order 7 Rule 11 CPC.

आदेश 7 नियम 11 – जहाँ परिसीमा का बिन्दू तथ्य व विधि का मिश्रित प्रश्न हो जो वादप्रश्न विरचित करने और साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् ही निराकृत किया जा सकता है – वाद आदेश 7 नियम 11 सी.पी.सी. के तहत खारिज नहीं किया जा सकता।

225* 420

Order 9 Rule 7 and Section 151 – An application under Order 9 Rule 7 CPC, for setting aside *ex parte* proceeding was rejected by the trial Court – Defendant produced another application under section 151 CPC with the prayer for permission to participate in further proceeding in the suit as also for taking W.S. and documents on record.

आदेश 9 नियम 7 और धारा 151 – एक पक्षीय कार्यवाही को अपास्त करने के लिये आदेश 9 नियम 7 सी.पी.सी. का एक आवेदन विचारण न्यायालय द्वारा निरस्त किया गया – प्रतिवादी ने एक अन्य आवेदन धारा 151 सी.पी.सी. के अधीन इस प्रार्थना के साथ प्रस्तुत किया कि उसे

वाद की आगे की कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दी जाये और उसका लिखित कथन और दस्तावेज अभिलेख पर लिये जाये।

226* 420

Order 9 Rule 13 and Order 43 Rule 1 – A claim case was awarded *ex parte* by Additional Member, MACT – Application filed under Order 9 Rule 13 CPC was also rejected by him – High Court allowed Misc. Appeal and held that to do substantial justice between the parties expression “sufficient cause” should be construed liberally – Condition to deposit 50% award amount and Rs. 5,000/- as cost imposed upon the non applicant.

आदेश 9 नियम 13 और आदेश 43 नियम 1 – अतिरिक्त सदस्य मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने एक दावा प्रकरण एकपक्षीय अवार्ड किया – आदेश 9 नियम 13 सी.पी.सी. के अधीन प्रस्तुत आवेदन भी उन्होंने निरस्त कर दिया – उच्च न्यायालय ने विविध अपील स्वीकार की और अभिनिर्धारित किया कि पक्षकारों के बीच तात्विक न्याय करने के लिए अभिव्यक्ति “पर्याप्त कारण” का उदास्तापूर्वक अर्थ लगाना चाहिए – अवार्ड राशि का 50 प्रतिशत व 5000/- खर्च जमा करवाने की शर्त अनावेदक पर लगाई गई।

227* 421

Order 13 Rule 4 – Objection regarding admissibility of a document and proper stage for deciding such objection.

आदेश 13 नियम 4 – दस्तावेज की ग्राह्यता संबंधी आपत्ति – ऐसी आपत्ती के निराकरण का उचित प्रक्रम।

228 421

Order 26 Rule 9 – In a suit for declaration and injunction, there is no agreed map on record and question involved in the matter is that in what survey number the road is moving – In that situation, order to appoint Commissioner will not amount to exercise of collecting the evidence but it will facilitate the Court to separate the wheat from the chaff.

आदेश 26 नियम 9 – घोषणा और निषेधाज्ञा के एक वाद में स्वीकृत मानचित्र अभिलेख पर नहीं था – मामले में अंतरग्रस्त प्रश्न यह था कि सड़क किस सर्वे नंबर से गुजरती है – ऐसी स्थिति में कमिश्नर नियुक्त करने का आदेश साक्ष्य संग्रहित करने के समान नहीं होगा बल्कि इससे न्यायालय को भूसे से दाना पृथक करने में सहायता होगी।

229* 425

Order 39 Rule 2-A – Whether fine can be imposed under Order 39 Rule 2-A CPC ? Held, No.

आदेश 39 नियम 2-ए – क्या आदेश 39 नियम 2-ए सी.पी.सी. के अधीन अर्थदण्ड अधिरोपित किया जा सकता है ? अभिनिर्धारित किया गया, नहीं।

230 425

Order 47 Rule 1 – Review of an order.

आदेश 47 नियम 1 – एक आदेश का पुनरावलोकन।

231 426

CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973

Sections 91 and 92 – Accused filed an application under sections 91 and 92 Cr.P.C. for preserving record of call details of officers of raiding party.

धाराएं 91 और 92 – अभियुक्त ने एक आवेदन धारा 91 और 92 द.प्र.सं. के अधीन, छापादल के अधिकारियों के काल डिटेल्स के अभिलेख को संरक्षित रखने के लिए पेश किया।

241 444

Sections 93 and 165 – See Sections 3 and 4 of the Prevention of Corruption Act, 1988.

धाराएं 93 एवं 165 – देखें भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराएं 3 और 4

232 427

Section 125 – See Sections 7(1) Exp. (f) and 7(2) (a) of the Family Courts Act, 1984.

धारा 125 – देखें परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 की धाराएं 7(1) का स्पष्टीकरण (एफ) और 7 (2)।

242 444

Sections 156(3), 157, 173 and 202 – Power to direct investigation under Section 156 (3) of the Code, exercise of.

Maxim "*Expressio unius est exclusio alterius*", non-applicability of.

Power u/s 202 of the Code, nature and scope of.

Section 157 of the Code, requirement of.

धाराएं 156(3), 157, 173 और 202 – धारा 156(3) संहिता के अधीन। अनुसंधान के निर्देश देने की शक्ति का प्रयोग किया जाना।

सूत्र "एक्सप्रेसन यूनियस इस्ट एक्सक्लूजन आल्टरियस" का लागू न हो।

धारा 202 संहिता की शक्तियों की प्रकृति और क्षेत्र स्पष्ट किया गया।

धारा 157 संहिता की आवश्यकताएँ – विधि समझाई गयी।

233 429

Section 167 (2) – What is the starting point of first fifteen days for the purpose of police custody?

Whether first fifteen days for the purpose of police custody specified in section 167 (2) Cr.P.C. should be reckoned from the date of surrender of accused before High Court on 18.06.2015 or when the accused was first produced by the police before the designated court on 30.06.2015 for police remand?

धारा 167(2) – पुलिस अभिरक्षा के उद्देश्य से प्रथम 15 दिन का प्रारंभिक बिन्दु क्या होता है?

धारा 167(2) द.प्र.सं. में विनिर्दिष्ट पुलिस अभिरक्षा के उद्देश्य से प्रथम 15 दिन की गणना अभियुक्त के उच्च न्यायालय के समक्ष सर्म्पण दिनांक 18 जून, 2015 से की जाना चाहिए या जब अभियुक्त को प्रथम बार पुलिस द्वारा नामनिर्दिष्ट न्यायालय के समक्ष 30 जून, 2015 को पुलिस रिमांड के लिए पेश किया उस दिन से की जाना चाहिए ?

234* 436

Sections 173 (5) (a) and 207 – Effect of non-supply of copies of the image of electronic documents as computer, keyboard, laptop or hard disc etc – How to consider ?

धाराएं 173 (5) (ए) और धारा 207 – इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख जैसे, कम्प्यूटर, की-बोर्ड, लेपटाप या हार्ड डिस्क आदि की इमेज प्रतिलिपियों न देने का प्रभाव – कैसे विचार में लिया जाये ?

235* 437

Section 197 – Allegation of police excess in connection with investigation of a criminal case – Requirement of previous sanction for prosecution.

धारा 197 – एक आपराधिक प्रकरण के अनुसंधान के संबंध में पुलिस द्वारा जादती के अभियोग – अभियोजन के लिये पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता। **236* 438**

Section 197 – Whether sanction under section 197 Cr.P.C. is necessary to initiate criminal proceedings in respect of offences under sections 420, 468, 477-A, 120-B read with 109 IPC ?

धारा 197 – क्या धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की अनुमति, धाराएं 420, 468, 477-ए, 120-बी सहपठित धारा 109 भा.दं.सं. के बारे में दांडिक कार्यवाही प्रारंभ करने के लिये, आवश्यक होती है? **246 450**

Sections 216, 227 and 228 – Framing of charge.

धाराएं 216, 227 और 228 – आरोप विरचित करना। **252* 464**

Sections 227 and 228 – At the time of framing of charge, only charge-sheet along with accompanying material is to be considered.

धाराएं 227 एवं 228 – आरोप विरचित करते समय अभियोग पत्र और उसके साथ संलग्न सामग्री को विचार में लिया जाता है। **237 439**

Section 319 – Power under section 319 Cr.P.C. to summon additional accused – When cannot be exercised?

धारा 319 – धारा 319 दं.प्र.सं. के अधीन अतिरिक्त अभियुक्त को सम्मन करने की शक्ति – कब प्रयोग नहीं की जा सकती ? **238 440**

Section 394 – Appeal against acquittal – Effect of death of appellant during pendency of appeal – Maxim “*actio personalis moritur cum persona*” is not applicable to criminal prosecution – The death of complainant cannot *ipso facto* bring termination of the proceeding.

धारा 394 – दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील – अपील लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी की मृत्यु का प्रभाव – सुक्ति “एक्टियो पर्सोनालिस मोरिटयूर कम परसोना” दांडिक अभियोजन पर लागू नहीं होती है – परिवादी की मृत्यु से कार्यवाही स्वतः समाप्त नहीं हो जाती। **263 478**

Section 439 (2) – Cancellation of bail – If it is not found that accused had misused the liberty after being released on bail, the same cannot be cancelled – Legal position relating to cancellation of bail reiterated.

धारा 439 (2) – जमानत निरस्त करना – अभियुक्त ने जमानत पर रिहा किये जाने के बाद स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया हो यह नहीं पाया गया – जमानत निरस्त नहीं की जा सकती – जमानत निरस्तीकरण के बारे में विधिक स्थिति पुनः बतलाई गई। **239 442**

Section 482 – Quashing of criminal proceedings – Name of accused was not stated in the FIR – He has been implicated as an accused only on the basis of statement made under section 27 of the Evidence Act of co-accused.

धारा 482 – दाण्डिक कार्यवाही अभिखंडित करना – अभियुक्त का नाम प्रथम सूचना प्रतिवेदन में दर्ज नहीं था – उसे सह-अभियुक्त के धारा 27 भारतीय साक्ष्य अधिनियम के तहत दिये गये कथन के आधार पर अभियुक्त के रूप में लिप्त किया गया था।

240* 444

DOWRY PROHIBITION ACT, 1961

दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961

Section 2 – Definition of “dowry”.

धारा 2 – “दहेज” की परिभाषा।

251 461

EVIDENCE ACT, 1872

साक्ष्य अधिनियम, 1872

Section 3 – See Sections 7, 13 (1)(d) r/w13(2) and 20 of the Prevention of Corruption Act, 1988.

धारा 3 – देखें भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराएं 7, 13 (1) (d) सहपठित धारा 13(2), और 20

272* 488

Section 3 – See Sections 399 and 402 of the Indian Penal Code, 1860.

धारा 3 – देखें भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धाराएं 399 और 402

254* 465

Sections 3 and 8 – Motive – Where case is based on circumstantial evidence, motive becomes an important factor but that does not mean, in all cases of circumstantial evidence, if prosecution is unable to prove the motive, prosecution must fail.

Theory of last seen – If a person, who is last seen in the company of another is dead or missing, the person with whom he was last seen alive has to explain the circumstances in which he parted with the company.

Case based on circumstantial evidence – The circumstances from which the conclusion of guilt is sought to be drawn must be fully proved beyond any reasonable doubt and such circumstances must be consistent and must form a complete chain unerringly point to the guilt of the accused.

धाराएं 3 और 8 – हेतुक – जहाँ मामला परिस्थिति जन्य साक्ष्य पर आधारित हो, हेतुक एक महत्वपूर्ण कारक होता है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी परिस्थिति जन्य साक्ष्य के मामलों में जहाँ अभियोजन हेतुक प्रमाणित करने में समर्थ नहीं होता है अभियोजन असफल ही होता है।

अन्तिम बार साथ देखे जाने का सिद्धांत – यदि एक व्यक्ति अन्तिम बार दूसरे व्यक्ति के साथ पाया जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है या वह गायब हो जाता है तब जिस व्यक्ति के साथ वह अन्तिम बार जीवित साथ पाया गया था उसे यह स्पष्टीकरण देना ही होता है कि कैसे वह व्यक्ति उससे अलग हुआ।

परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामला – परिस्थितियाँ जिनके आधार पर अभियुक्त के दोषी होने का निष्कर्ष निकाला जाना है वे सभी युक्तियुक्त संदेह से परे प्रमाणित होना चाहिए

परिस्थितियाँ निश्चित और एक पूर्ण श्रृंखला बनाती हो और अभियुक्त के दोषी होने को अचूक रूप से इंगित करती हो। **249 456**

Section 27 – Accused was in police custody in a particular offence – In interrogation, he led to the discovery in connection with other offence.

धारा 27 – अभियुक्त एक विशिष्ट अपराध में पुलिस अभिरक्षा में था – पूछताछ में उसने अन्य अपराध से संबंधित (नये तथ्यों का पता लगने) संबंधी जानकारी दी। **261 (i) 476**

Section 65 (b) – See Sections 91 and 92 of the Criminal Procedure Code, 1973

धारा 65 (बी) – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 91 और 92 **241 444**

EXCISE ACT, 1915 (M.P.)

आबकारी अधिनियम, 1915 (म.प्र.)

Section 34 (1) and (2) – See Section 482 of the Criminal Procedure Code, 1973

धारा 34 (1) और (2) – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 **240* 444**

FAMILY COURTS ACT, 1984

परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984

Sections 7(1) Exp. (f) and 7 (2) (a) – Husband took voluntary retirement after the judgment dated 17.2.2012 – Whether it is a ground for reducing the amount of maintenance?

Whether an application under section 125 Cr.P.C. filed by a divorced Muslim woman, is maintainable before the Family Court?

धाराएं 7(1) का स्पष्टीकरण (एफ) और 7 (2) – (i) पति ने निर्णय दिनांक 17.02.2012 के बाद स्वेच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली – क्या यह भरण पोषण की राशि घटाने या कम करने के लिए एक आधार हो सकता है?

क्या एक तलाक शुदा मुस्लिम महिला द्वारा प्रस्तुत आवेदन धारा 125 दं.प्र.सं., परिवार न्यायालय के समक्ष, प्रचलन योग्य है? **242 445**

HINDU MARRIAGE ACT, 1955

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955

Section 13 – Divorce petition on ground of epilepsy, proof of.

धारा 13 – मिरगी के आधार पर विवाह विच्छेद याचिका में प्रमाण। **243 447**

Section 13 (1) (1a) – Divorce on the ground of mental cruelty.

धारा 13 (1) (1a) – मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह विच्छेद याचिका।

244* 449

INDIAN PENAL CODE, 1860

भारतीय दण्ड संहिता, 1860

Sections 97, 100, 302 and 325 – Right of private defence and whether or not a right of private defence of person or property was available to an accused is a question of fact or at least a mixed question of law and fact.

धाराएं 97, 100, 302 और 325 – निजी प्रतिरक्षा का अधिकार – एक अभियुक्त को शरीर या संपत्ति का निजी प्रतिरक्षा का अधिकार उपलब्ध था या नहीं यह एक तथ्य का प्रश्न या कम से कम विधि और तथ्य का एक मिश्रित प्रश्न होता है।

245* 450

Sections 109, 120-B, 420, 468 and 477 – See Section 197 of the Criminal Procedure Code, 1973.

धाराएं 109, 120-बी, 420, 468 और 477 – देखें दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 197।

246 450

Sections 149, 302 and 304 – Effect of non-framing of specific charge under section 149 IPC.

धाराएं 149, 302 और 304 – धारा 149 भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन विनिर्दिष्ट आरोप विरचित न करने का प्रभाव।

247 452

Sections 149, 299, 300, 302 and 304 – Culpable homicide and murder – When a case falls under section 302 or 304 Part-I or II IPC – Factors to be seen.

धाराएं 149, 299, 300, 302 और 304 – सदोष मानव वध और हत्या – कब एक मामला धारा 302 या 304 भाग – I या – II, भा.दं.सं. में आता है – तथ्य जो देखने होंगे।

248* 455

Section 302 – See Sections 3 and 8 of the Evidence Act, 1872.

धारा 302 – देखें साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 3 और 9।

249 456

Section 304-B – Dowry death – The prosecution should produce evidence to prove that soon before her death, the deceased was subjected to cruelty or harassment.

धारा 304-बी – दहेज मृत्यु – अभियोजन को यह प्रमाणित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहिए कि मृतक के साथ उसकी मृत्यु के ठीक पूर्व क्रूरता या उसे परेशान किया गया था।

250 459

Section 304-B – See Section 2 of the Dowry Prohibition Act, 1961.

धारा 304-बी – देखें दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2।

251 461

Sections 306 and 498-A – See Sections 216, 227 and 228 of the Criminal Procedure Code, 1973.

धाराएं 306 और 498-ए – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 216, 227 और 228।

252* 464

Sections 324 and 326 – Where complainant and accused are close relatives, taking into account the compromise reached between them, reduction in sentence can be ordered.

धाराएं 324 और 326 – जहाँ परिवादी और अभियुक्त निकट संबंधी हो वहाँ उनके बीच हुए समझौते के प्रकाश में दण्ड को कम करने का आदेश किया जा सकता है। **253 465**

Sections 399 and 402 – Offence of making preparation and assembling to commit dacoity – Appreciation of evidence.

धाराएं 399 और 402 – डकैती करने की तैयारी करने और डकैती करने के प्रयोजन से एकत्रित होने के अपराध – साक्ष्य का मूल्यांकन। **254* 465**

LIMITATION ACT, 1963

परिसीमा अधिनियम, 1963

Section 14 – See section 34 (2) of the Arbitration and Conciliation Act, 1996.

धारा 14 – देखें माध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 (2) **223 417**

Articles 64 and 65 – See Order 7 Rule 11 of the Civil Procedure Code, 1908

अनुच्छेद 64 और 65 – देखें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 7 नियम 11

225 420

MOTOR VEHICLES ACT, 1988

मोटर यान अधिनियम, 1988

Section 2(30) – Whether it is the duty of financier bank to renew the insurance policy of the vehicle from time to time, which was the subject matter of an agreement of hypothecation and also in possession of the owner ?

धारा 2(30) – क्या यह वित्तदाता या फाइनेंसर बैंक का कर्तव्य है कि वाहन की बीमा पालिसी का समय – समय पर नवीनीकरण करावे, जो वाहन हायपोथिकेशन अनुबंध का विषय है और स्वामी के आधिपत्य में था ? **255 467**

Section 166 – Assessment of compensation in death case – Deceased aged 32, was working in an Indian restaurant in Germany.

धारा 166 – मृत्यु प्रकरण में प्रतिकर निर्धारण – मृतक 32 वर्ष उम्र का जर्मनी में भारतीय रेस्टोरेंट में कार्य करता था। **256 469**

Section 166 – Assessment of compensation in injury case.

धारा 166 – चोट के प्रकरण में प्रतिकर निर्धारण। **257 470**

Sections 166 and 168 – Assessment of compensation in death case – Choice of multiplier – Deceased was a bachelor – Claimants are the parents.

धाराएं 166 और 168 – मृत्यु प्रकरण में प्रतिकर का निर्धारण – गुणक का चयन – मृतक अविवाहित था – दावेदार माता पिता हैं। **258 470**

Sections 166 and 168 – Composite negligence – Liability of joint tortfeasors – Whether a claimant can recover entire compensation from one of the joint tortfeasors particularly when the composite negligence of drivers of both trailer-truck and bus is in the ratio of 2/3rd and 1/3rd respectively ?

धाराएं 166 और 168 – सम्मिश्र उपेक्षा – संयुक्त दोषकर्त्ताओं का दायित्व – क्या एक दावेदार पूरा प्रतिकर संयुक्त दोषकर्त्ताओं में से किसी एक दोषकर्त्ता से वसूल कर सकता है विशेषकर जहाँ दुर्घटना में ट्रेलर ट्रक व बस के चालकों की सम्मिश्र उपेक्षा 2/3 और 1/3 की सीमा तक पाई गई है ?

259 472

N.D.P.S. ACT, 1985

स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985

Section 8/18 – See Sections 91 and 92 of the Criminal Procedure Code, 1973.

धाराएं 8/18 – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 91 और 92। **241 444**

Sections 15, 35, 50 and 54 – Conscious possession – How to be judged?

Search and seizure from truck – Section 50 of the Act is not applicable.

Witnesses have identified the accused in the torch light – They had also seen them running away – Nothing has been elicited in their cross-examination to discern the testimony of witnesses – Non-holding of T.I. parade held, insignificant.

धाराएं 15, 35, 50 और 54 – जागृत अधिपत्य – कैसे निर्णित किया जावे ?

ट्रक से तलाशी और जप्ती – आधिनियम की धारा 50 लागू नहीं होती है।

गवाहों ने अभियुक्त को टार्च की रोशनी में पहचाना था – उन्होंने उन्हें (अभियुक्तगण को) भागते हुए भी देखा था – गवाहों के प्रतिपरीक्षण में ऐसा कुछ नहीं लाया गया था, जिससे उनके कथन पर अविश्वास किया जाए – पहचान परेड़ का संचालन न करवाना महत्वहीन माना गया।

260 473

Sections 18, 42, 43 and 52-A – Search made in a public place i.e. beneath a bridge of a public road, so the question of compliance of section 42 (1) & (2) does not arise.

Delay in sending seized articles for chemical examination – FSL report states that sealed packet was received with the seal intact – There was no evidence of its tampering – Delay of 40 days, held, immaterial.

धाराएं 18, 42, 43 और 52 – तलाशी लोक स्थान अर्थात् पुलिया के नीचे एक आम सड़क पर की गई, धारा 42 (1), (2) के अनुपालन का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है।

बरामद सामग्रियों को रासायनिक परीक्षण के लिये भेजने में देरी – एफ.एस.एल. प्रतिवेदन में यह उल्लेख है की सीलबंद पैकेट प्राप्त हुये सील साबूत (अक्षुण्ण) पाई गई – उसके साथ (जब्त सामग्री के साथ) छोड़छाड़ करने के बारे में कोई साक्ष नहीं थी – अभिनिर्धारित किया गया 40 दिन का विलंब अतात्विक है।

261 (ii) 476

& (iii)

NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881

Section 138 – Non-signatory of the cheque was made an accused in a complaint under section 138 of the N.I. Act.

धारा 138 – धारा 138 एन.आई. एक्ट के परिवाद में चैक पर हस्ताक्षर न करने वाले को एक अभियुक्त बनाया गया।

262* 478

Section 138 – See Section 394 of the Criminal Procedure Code, 1973.

263 478

Section 138 (b) – Constructive service of demand notice – What it may amount to?

धारा 138 (बी) – मांग सूचनापत्र की आन्वयिक तामील – किसके समान है ?

264 479

Sections 138 and 139 – Neither cheque nor signature of accused has been disputed by the defence – Presumption u/s 139 of N.I. Act would operate.

धाराएं 138 और 139 – न तो चैक न उस पर अभियुक्त के हस्ताक्षर को बचाव द्वारा विवादित किया गया है – धारा 139 एन.आई.एक्ट की उपधारणा लागू होगी।

265 480

Sections 138 and 141 – Company was not made an accused and even demand notice was also not sent to it – But accused, in his personal capacity, had drawn the cheque, on a bank account maintained by him for paying the payee – Appeal against acquittal allowed.

धाराएं 138 और 141 – कंपनी को एक अभियुक्त नहीं बनाया गया, यहां तक की उसे मांग सूचना पत्र भी नहीं भेजा गया – किन्तु अभियुक्त ने उसके द्वारा पोषित बैंक खाते से, व्यक्तिगत हैसियत में, चैक जारी किया जो कि पाने वाले को भुगतान के लिये था। दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील स्वीकार की।

266 481

Sections 138 and 141 – Taking cognizance against Director of a company by Magistrate.

धाराएं 138 और 141 – मजिस्ट्रेट द्वारा एक कंपनी के संचालक के विरुद्ध प्रसंज्ञान लेना।

267 482

Sections 138 and 141 – Whether notice under section 138(b) of the N.I. Act is mandatorily required to be sent to the Directors of a Company before a complaint could be filed against such Directors along with the Company?

धाराएं 138 और 141 – क्या धारा 138 (बी) एन.आई. एक्ट का सूचनापत्र कंपनी के संचालकों को, कंपनी के साथ उनके विरुद्ध परिवाद पेश करने के पूर्व भेजना, आज्ञापक रूप से आवश्यक होता है।

268 483

Sections 138 and 142 – Whether provisions of section 5 of the Limitation Act are applicable to the complaint made under section 138 of the N.I. Act?

What is the proper stage for filing an application for condonation of delay as per proviso to section 142 (b) of the N.I. Act ?

धाराएं 138 और 142 – क्या धारा 5 परिसीमा अधिनियम के प्रावधान धारा 138 एन.आई. एक्ट के अधीन परिवाद में लागू होते हैं ?

धारा 142 (बी) एन. आई. एक्ट के परंतुक के अनुसार विलंब क्षमा करने के लिये आवेदन प्रस्तुत करने का उचित प्रक्रम क्या है ?

269 484

PREVENTION OF CORRUPTION ACT, 1988

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988

Sections 3 and 4 – Issuance of search warrant by the Special Judge appointed under P.C. Act, 1988 – Whether by invoking jurisdiction under section 93 (1) Cr. P.C. search warrant can be issued by the Court competent on the request of Investigating Agency ?

धाराएं 3 और 4 – भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधीन नियुक्त विशेष न्यायाधीश द्वारा तलाशी वारण्ट जारी किया जाना – क्या धारा 93(1) दं.प्र.सं. के अधीन क्षेत्राधिकार प्रयोग करके सक्षम न्यायालय द्वारा, अनुसंधान एजेन्सी के निवेदन पर, तलाशी वारण्ट जारी किया जा सकता है? **232**

427

Sections 7, 13 (1) (d) r/w 13(2) – Almost all the facts alleged by the prosecution are admitted by the accused in his examination under section 313 of Cr.P.C. – He has taken the defence that the amount was received by him on account of repayment of loan which was given to the complainant by him prior to the date of incident – Defence version was not found acceptable by the trial court as well as by Hon'ble High Court.

धाराएं 7, 13(1)(d) और सहपठित धारा 13(2) – अभियुक्त ने अभियोजन द्वारा अभिकथित लगभग सभी तथ्यों को उसके परीक्षण धारा 313 दं.प्र.सं. में स्वीकार कर लिया – उसने यह बचाव लिया कि उसने जो राशि प्राप्त की है वह ऋण के भुगतान के लिए है जो ऋण परिवादी को घटना दिनांक के पूर्व उसने दिया था – बचाव अभिकथन को विचारण न्यायालय और माननीय उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार योग्य नहीं पाया।

270* 486

Sections 7, 13(1)(d) and 13(2) – When alleged previous enmity becomes immaterial in corruption cases ?

When demand, acceptance and recovery of tainted money from possession of accused have been proved – No Preliminary inquiry could be done due to paucity of time – Plea of defence is not found reliable – Presumption under Section 20 of the Act stands un rebutted.

धाराएं 7, 13(1)(डी) और 13(2) – कब अभिकथित पूर्व रंजिश भ्रष्टाचार के मामले में अतात्विक हो जाती है ?

जब माँग, स्वीकारोक्ती और दूषित धन का अभियुक्त के आधिपत्य से बरामद होना प्रमाणित हो जाता है। समय की कमी के कारण कोई प्रारंभिक जाँच नहीं की जा सकी हो। बचाव का अभिवाक स्वीकार योग्य नहीं पाया जाता है। धारा 20 अधिनियम की उपधारणा अखंडित रहती है।

271 487

Sections 7, 13 (1)(d) r/w/s 13(2) and 20 – Appreciation of evidence – Statement of key witness PW 9 was recorded almost after three years of incident – Cross-examination was not done on the same day – In his cross-examination, he Admitted that the amount was not demanded by him.

धाराएं 7, 13 (1) (d) सहपठित धारा 13(2) और 20 – साक्ष्य का मूल्यांकन – मुख्य गवाह, अभियोजन साक्षी क्रमांक 9 का बयान घटना के लगभग तीन वर्ष बाद अभिलिखित किया गया था – उसी दिन उसका प्रतिपरीक्षण नहीं किया गया था – उसने प्रतिपरीक्षण में कहा कि अभियुक्त द्वारा धनराशि की मांग नहीं की गई थी।

272* 488

Sections 7, 13 (1) (d) r/w/s 13(2) and 20 – The tainted money was recovered from the possession of the accused – Immediate written explanation offered by him was that the alleged money was thrust into his pocket – During trial he did not stand by his earlier version and remained silent – Where the accused has not given any explanation that under what circumstances tainted money was found in his possession, presumption under section 20 of the Act, 1988 is not rebutted – Held, High Court rightly reversed the acquittal.

धाराएं 7, 13(1)(डी) सहपठित धारा 13(2) और 20 – दूषित धन अभियुक्त के आधिपत्य से बरामद हुआ – अभियुक्त द्वारा तत्काल दिया गया लिखित स्पष्टीकरण यह था कि धन उसकी जेब में डाला गया था – विचारण के दौरान वह उसके पूर्व कथन पर कायम नहीं रहा और मौन रहा – जहां अभियुक्त यह स्पष्टीकरण नहीं देता है कि किन परिस्थितियों में दूषित धन उसके आधिपत्य में पाया गया धारा 20 अधिनियम 1988 के अधीन उपधारणा खण्डित नहीं होती है – अभिनिर्धारित किया गया, उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति को सही रूप से उल्टा है।

273 489

Section 13 (1)(e) r/w/s 13 (2) – What is the meaning of “known sources of income”?

धारा 13 (1) (ई) और 13 (2) – “आय के ज्ञात स्रोत” का अर्थ क्या है ? **274 489**

SCHEDULED CASTES AND SCHEDULED TRIBES (PREVENTION OF ATROCITIES) ACT, 1989

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

Section 3(1)(x) – Merely utterance of word “kuriawale” without any intention shall not make out the offence under section 3(1)(x) of the SC/ST Act.

धारा 3(1)(10) – शब्द “कुरिया वाले” का बिना किसी आशय के उच्चारण करने मात्र से धारा 3 (1)(10) अधिनियम, 1989 का अपराध नहीं बनेगा।

275 491

SERVICE LAW :

सेवा संबंधि विधि :

Fundamental Rules.

Rule 56(3) – Compulsory retirement of a Govt. servant – All that is required for compulsorily retiring a Government servant, is the subjective satisfaction of the Government that such compulsory retirement is in the public interest.

The principles of compulsory retirement reiterated.

मूलभूत नियम

नियम 56 (3) – एक शासकीय सेवक की अनिवार्य सेवानिवृत्ति – एक शासकीय सेवक को अनिवार्य सेवानिवृत्त करने के लिए शासन का यह व्यक्तिनिष्ठ संतोष होना आवश्यक होता है कि अनिवार्य सेवा निवृत्ति लोकहित में है।

अनिवार्य सेवा निवृत्ति के सिद्धांत पुनः बतलाये गये।

276* 491

PART-IV

(IMPORTANT CENTRAL/STATE ACTS & AMENDMENTS)

1. The Negotiable Instruments (Amendment) Ordinance, 2015 **25**

•

सम्पादकीय

प्रदीप कुमार व्यास
प्रभारी संचालक

सम्माननीय पाठक गण,

अकादमी में पहली बार म.प्र. उच्च न्यायालय, मुख्य पीठ जबलपुर एवं खंडपीठ इंदौर एवं ग्वालियर में कार्यरत प्रोटोकॉल अधिकारी एवं सहायक प्रोटोकॉल अधिकारियों के लिये एक प्रशिक्षण कार्यक्रम दिनांक 23.08.2015 को रखा गया जिसमें माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र मेनन साहब एवं माननीय न्यायमूर्ति श्री शांतनु केमकर जी ने अपनी गरिमामय उपस्थिति से कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई।

माह सितंबर 2015 में एक कार्यशाला किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 पर 12.09.2015 को इंदौर में रखी गई है जिसमें किशोर न्याय बोर्ड के प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड के सदस्य, किशोर पुलिस ईकाई के अधिकारीगण, किशोर कल्याण अधिकारी आदि 40 सदस्य शामिल होना है। एक दो दिवसीय कार्यशाला दिनांक 12.09.2015 एवं 13.09.2015 को जबलपुर में जिला उपभोक्ता फोरम के पीठासीन अधिकारी एवं सदस्यगण के लिये रखी गई है।

दिनांक 18.09.2015 से 21.09.2015 तक एक कार्यशाला जबलपुर एवं उसके आस-पास के जिलों के अभिभाषकगणों के लिये जबलपुर में रखी गई है। एक दो दिवसीय कार्यशाला 10.10.15 एवं 11.10.15 को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 पर और दूसरी कार्यशाला दिनांक 03.10.2015 एवं 04.10.2015 को अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 पर जबलपुर में रखी गई है। दिनांक 31.10.2015 एवं 01.11.2015 को श्रम न्यायालय के पीठासीन अधिकारीगण के लिये जबलपुर में एक कार्यशाला रखी गई है।

इस तरह इन दो माहों में विभिन्न विषयों पर कार्यशालाएं रखी गई हैं।

इस अंक में एन.डी.पी.एस. एक्ट, 1985 पर दो लेख शामिल किये गये हैं। एक लेख गत अंक में इसी विषय पर लिया गया था अतः तीनों लेखों को मिलाकर इस विषय पर लगभग संपूर्ण वैधानिक स्थिति पाठकों के सामने रखी गई है।

अविवाहित मृतक से संबंधित मोटर दुर्घटना क्लेम प्रकरणों में गुणांक की स्थिति को लेकर भी एक लेख शामिल किया गया है जिससे इस संबंध में विधिक स्थिति स्पष्ट हो सके।

एक प्रश्न इन दिनों प्रायः पूछा जा रहा है कि केंद्र सरकार ने विभिन्न अधिनियमों में जितने संशोधन किये थे क्या वे निरसित अधिनियम, 2015 द्वारा समाप्त कर दिये गये हैं?

इस संबंध में धारा 6-ए, साधारण खंड अधिनियम, 1897 बिल्कुल स्पष्ट है और इसे न्याय दृष्टांत जेठानंद बेताब वि. स्टेट ऑफ देहली, ए.आई.आर., 1960 एस. सी. 89, हिंदुस्तान जर्नल लिमिटेड वि. दिनेश अवस्थी ए.आई.आर. 1957 मध्य भारत 125 डी.बी., खुदाबख्श वि. मेनेजर केलेडोनियम प्रेस, ए.आई.आर. 1954, कलकत्ता 484 डी.बी. और जयपाल सिंह वि. स्टेट आफ यू.पी., 1990 सी.आर.एल.जे., 2504 के साथ पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि यदि किसी मूल अधिनियम को किसी संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित किया जाता है व ऐसा संशोधन अधिनियम बाद में निरसित कर दिया जाता है तो जब तक कि विधायिका का भिन्न आशय प्रतीत न हो, उसके द्वारा मूल अधिनियम में जोड़ा गया संशोधन प्रभावित नहीं होता है।

ऐसे संशोधन अधिनियमों को केवल इसलिये निरसित किया जाता है कि अब उन संशोधन अधिनियमों की कोई आवश्यकता नहीं होने से विधान की पुस्तक से उनका अनावश्यक भार कम किया जाये क्योंकि मूल अधिनियम में संशोधन द्वारा समाविष्ट की गई बात प्रभाव में आ चुकी होती है अतः यह भ्रम नहीं रहना चाहिये कि सारे संशोधन समाप्त कर दिये गये हैं बल्कि सही स्थिति यह है कि उन संशोधनों पर निरसित अधिनियम का कोई प्रभाव नहीं है।

अक्टूबर 2014 से इस द्विमासिक पत्रिका में एक प्रयोग प्रारम्भ किया गया था जिसके अनुसार पत्रिका के भाग दो में प्रकाशित महत्वपूर्ण निर्णय के हेडनोट के नीचे उनका हिंदी अनुवाद शामिल करना प्रारंभ किया गया था। मुझे आशा है इस प्रयोग से विगत एक वर्ष में इस पत्रिका की उपयोगिता में वृद्धि हुई होगी।

इस पत्रिका के बारे में आपके अमूल्य सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

आपका

प्रदीप कुमार व्यास

जब दिमाग कमजोर होता है तब विपरीत परिस्थिति समस्या बन जाती है।
जब दिमाग स्थिर होता है तब विपरीत परिस्थिति चुनौती बन जाती है।
जब दिमाग मजबूत होता है तब विपरीत परिस्थिति अवसर बन जाती है।

आइये हम सब मिलकर संकल्प करें कि हमारे सामने जो भी विपरीत परिस्थिति आये हम उसे चुनौती के रूप में लें और उसे एक सुअवसर में बदलने के लिये पूरी लगन, ईमानदारी और परिश्रम से हर संभव प्रयास करें।

**Madhya Pradesh State Judicial Academy,
High Court of M.P., Jabalpur**



**Shri Ved Prakash, Registrar General, High Court of M.P.
addressing the participants during the Specialised Skill Enhancement
Programme for Civil Judges Class – I held in the Academy
from 17.08.2015 to 22.08.2015**

**Madhya Pradesh State Judicial Academy,
High Court of M.P., Jabalpur**



**Training programme for the Protocol Staff of the
High Court of M.P. held in the Academy on 23.08.2015**

**HON'BLE SHRI JUSTICE GULAB SINGH SOLANKI,
HON'BLE SHRI JUSTICE TARUN KUMAR KAUSHAL AND
HON'BLE SHRI JUSTICE BHAGWAN DAS RATHI,
DEMIT OFFICE**



Hon'ble Shri Justice G.S. Solanki demitted office on 05.09.2015 on His Lordship's attaining superannuation. Born on 06.09.1953 at Anjad, District Badwani. After obtaining degrees of B.SC., M.A. (Economics) and LL.B., practiced as an Advocate for one year. Joined Judicial Service as Civil Judge Class II on 14.09.1979. Was promoted as Additional District Judge in the year 1991.

Worked in different capacities at Harda, Sohagpur, Bhanpura, Dewas, Indore, Sagar and Raisen. Also worked as Additional Registrar, Bhopal Gas Victims, Bhopal, Additional Welfare Commissioner, Gas Victims, Bhopal for a short term and as Additional Secretary as well as Secretary, Law & Legislative Affairs Department, Govt. of M.P., Bhopal. Worked as District & Sessions Judge, Raisen. Prior to elevation, was District Judge (Inspection & Vigilance), Jabalpur Zone from May, 2007.

Took oath as Additional Judge, High Court of Madhya Pradesh on 03.05.2010 and Permanent Judge on 24.09.2011.



Hon'ble Shri Justice Tarun Kumar Kaushal demitted office on 07.09.2015 on His Lordship's attaining superannuation. Born on 08.09.1953 in Bombay. Son of Late Shri Uddhav Kumar Kaushal, a Gwalior based poet and freedom fighter. Obtained B.Sc. and LL.B. Degrees in the year 1974 and 1977, respectively. Won awards in debate and moot Court competitions. Started practice on criminal side in the High Court of Madhya Pradesh in the year 1978. Joined Judicial Service on 20.08.1979. Was promoted as Additional District & Sessions Judge in the year 1992 and confirmed as District Judge in the Higher Judicial Services on 04.10.1997. Granted Selection Grade on 08.05.1999 and Super Time Scale on 26.02.2006. Worked in different capacities at Bhind, Morena, Sardarpur (Dhar), Sanwer (Indore), Ujjain, Indore, Dhar, Mandleshwar, Khargone and Khandwa. Also worked as

President, District Consumer Forum, Guna and Additional Welfare Commissioner, Bhopal Gas Victims, Bhopal. Also worked in different capacities in the High Court Registry at Main Seat Jabalpur from 2007 as O.S.D., Principal Registrar (Inspection & Vigilance). Was Registrar General of the High Court of M.P. prior to elevation.

Took oath as Additional Judge, High Court of Madhya Pradesh on 03.01.2011 and as Permanent Judge on 02.01.2013



Hon'ble Shri Justice Bhagwan Das Rathi demitted office on 15.09.2015 on His Lordship's attaining superannuation. Born on 16th September, 1953. After completing B.Sc., LL.B., was enrolled as an Advocate in the year 1978 and started practicing in Civil and Criminal sides in High Court and Lower Courts at Indore. Joined Judicial Services on 04.09.1979. Confirmed as Civil Judge in the year 1983. Appointed as C.J.M. in the year 1991. Was Additional Director, Judicial Officers' Training Institute, Jabalpur from August, 1994 to April, 1996. Prepared a guide for smooth operation of laptop based on Linux System which was published by the High of M.P. from August 1994 to April 1996. Confirmed as District Judge in Higher Judicial Services in the year 1997. Was granted Selection Grade Scale w.e.f. 08.05.1999. Posted as Special Judge for cases under SC/ST (P.A.) Act and N.D.P.S. Act in the year 2000. Was granted Super Time Scale w.e.f. 19.10.2006. Was posted as Principal Registrar, High Court of M.P., Bench Gwalior from 01.09.2009 till elevation.

Took oath as Additional Judge, High Court of Madhya Pradesh on 01.04.2013 and as Permanent Judges on 06.09.2014.

We on behalf of JOTI Journal wish Their Lordships a healthy, happy and prosperous life.

●

PART - I

स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 या एन.डी.पी.एस. एक्ट (भाग.2)

प्रदीप कुमार व्यास,
प्रभारी संचालक,
म.प्र. राज्य न्यायिक अकादमी,
जबलपुर

इस अधिनियम के तहत गठित विशेष न्यायालय के विशेष न्यायाधीश के समक्ष निरोध, जमानत, प्रसंज्ञान, दण्डादेश व उसका निलंबन तथा उपधारणाओं के बारे में कई प्रश्न उत्पन्न होते हैं। जिनके संबंध में विभिन्न प्रकार के न्यायदृष्टांत प्रस्तुत किये जाते हैं उस समय विशेष न्यायालय का अमूल्य समय नष्ट होता है। लघु मात्रा के मामले चूंकि मजिस्ट्रेट के न्यायालय में चलते हैं अतः उनका भी समय नष्ट होता है यहाँ इन प्रश्नों पर विचार करेंगे और उनके बारे में नवीनतम वैधानिक स्थिति पर भी विचार करेंगे।

निरोध या अभिरक्षा

प्रायः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि अभियुक्त का प्रथम रिमांड चाहे पुलिस अभिरक्षा का हो या न्यायिक अभिरक्षा का वह कौन देगा ?

धारा 36-1(1)(बी) अधिनियम के अनुसार यदि इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध के अभियुक्त व्यक्ति या संदिग्ध व्यक्ति को धारा 167 (2) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट के समक्ष भेजा जाता है तब यदि वह न्यायिक मजिस्ट्रेट है तो वह कुल 15 दिन की और यदि वह कार्यपालक मजिस्ट्रेट है तो कुल 7 दिन की अभिरक्षा अधिकृत कर सकता है।

परंतु ऐसे मामले जो विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय हैं वहाँ मजिस्ट्रेट की यह राय हो कि उस व्यक्ति का निरोध अनावश्यक है तो वह उसे अधिकारिता रखने वाला विशेष न्यायालय के समक्ष उस व्यक्ति को भेजने का आदेश करेगा।

उक्त प्रावधान से यह स्पष्ट है कि जब कभी इस अधिनियम के तहत किसी अभियुक्त व्यक्ति को या संदिग्ध व्यक्ति को किसी भी मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाये तो वह प्रथम 15 दिवस की अभिरक्षा अधिकृत कर सकता है। अतः किसी भी न्यायिक मजिस्ट्रेट को इस बारे में कोई संदेह नहीं रहना चाहिए कि वे इस अधिनियम के अंतर्गत अभियुक्त की अभिरक्षा अधिकृत कर सकते हैं।

यदि अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के सामने पेश न करके प्रथम बार ही सीधे विशेष न्यायालय के समक्ष पेश कर दिया जाये तब क्या स्थिति बनेगी?

इस संबंध में धारा 36-सी अधिनियम के अनुसार इस अधिनियम में जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंध किसी विशेष न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को लागू होंगे और उक्त उपबंधों के प्रयोजन के लिए विशेष न्यायालय एक सेशन न्यायालय समझा जायेगा और उसके समक्ष अभियोजन संचालित करने वाला व्यक्ति लोक अभियोजक समझा जायेगा।

इस प्रावधान के प्रकाश में देखे तो विशेष न्यायालय को दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित के सिवाय लागू होते हैं पूरे अधिनियम में कहीं भी ऐसा प्रावधान नहीं है कि विशेष न्यायाधीश अभियुक्त की पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा स्वीकार नहीं कर सकते हैं। अतः यदि प्रथम बार अभियुक्त को विशेष न्यायालय के समक्ष पेश कर दिया जाये तो वे भी अभियुक्त की अभिरक्षा प्राधिकृत कर सकते हैं।

धारा 36-डी अधिनियम में संक्रमणकालीन प्रावधान बनाये गये हैं जिनके अनुसार जब तक धारा 36 अधिनियम के अंतर्गत विशेष न्यायालय का गठन नहीं हो जाता तब तक संशोधित अधिनियम, 1988 लागू होने पर या उसके बाद विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचारित किये जायेंगे और लंबित कार्यवाहिया पूर्ववत् सत्र न्यायालय द्वारा सुनी जायेगी।

जिन जिलों में विशेष न्यायालय गठित नहीं है या विशेष न्यायाधीश का पद रिक्त है वहाँ धारा 36-डी लागू होगी यह भी स्पष्ट है।

बाध्यताकारी जमानत

सर्वप्रथम धारा 167 (2) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन अभियुक्त के जमानत के आलोच्य अधिकार या Indefeasible right के बारे में विचार करते हैं।

धारा 167 (2) (ए) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अनुसार मृत्यु, आजीवन कारावास या 10 वर्ष से अन्यून की अवधि के लिए कारावास से दण्डनीय मामलों में यदि 90 दिन की अवधि में अभियोग पत्र प्रस्तुत नहीं होता है और अन्य मामलों में 60 दिन की अवधि में अभियोग पत्र प्रस्तुत नहीं होता है और ऐसे 90 या 60 दिन व्यतित हो जाने के बाद अभियुक्त जमानत देने के लिए तैयार होता है तो उसे जमानत पर छोड़ना आज्ञापक होता है।

धारा 36-ए (4) अधिनियम के अनुसार धारा 19 अथवा धारा 24 अथवा धारा 27-ए के अंतर्गत दण्डनीय अपराध के अभियुक्त व्यक्तियों के संबंध में अथवा वाणिज्यिक मात्रा के संबंध में अपराधों के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 की उपधारा (2) में "90 दिनों" के संदर्भ को, जहाँ वे आते हैं, "180 दिनों" के संदर्भ के रूप में माना जायेगा, परंतु यदि 180 दिनों की उक्त अवधि के भीतर अनुसंधान पूर्ण करना संभव नहीं हो वहाँ विशेष न्यायालय 180 दिनों के उस अवधि से अधिक अभियुक्त के निरोध के लिए विनिर्दिष्ट कारणों और अनुसंधान की प्रगति को दर्शाते हुए लोक अभियोजक की रिपोर्ट पर उस अवधि को 1 वर्ष तक बढ़ा सकता है।

इस तरह धारा 36-ए (4) अधिनियम के अनुसार यदि वाणिज्यिक मात्रा के मामले में 180 दिन में अंतिम प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं होता है तो अभियुक्त जमानत का हकदार हो जाता है लेकिन यदि लोक अभियोजक ने अनुसंधान की प्रगति दर्शाते हुए समय बढ़ाने का निवेदन करते हुए रिपोर्ट पेश कर दी है तब न्यायालय को पहले इस प्रश्न पर विचार करना होगा कि क्या 180 दिन के आगे निरोध की अवधि बढ़ायी जाना उचित है या नहीं।

न्यायदृष्टांत संजय कुमार केडिया विरुद्ध इंटेलिजेन्स आफिसर, एनसीबी, एआईआर 2010 एससी (सप्लीमेंट) 744 में यह प्रतिपादित किया है कि 180 दिन की अधिकतम अवधि को एक वर्ष तक बढ़ाने के लिए निम्न शर्तें पूर्ण होना आवश्यक होती हैं :-

1. लोक अभियोजक का एक प्रतिवेदन होना चाहिए,
2. उस प्रतिवेदन में अनुसंधान की प्रगति दर्शाना चाहिए और,
3. 180 दिन से अधिक निरोध की अवधि चाहने के लिए विशेष बाध्यताकारी कारण होना चाहिए और,
4. अभियुक्त को सूचना पत्र होना चाहिए।

इस प्रकार अभियुक्त को सूचना पत्र (लोक अभियोजक के प्रतिवेदन की सूचना) दी जाना चाहिए और दोनों पक्षों को सुनकर न्यायालय को यह देखना चाहिए कि क्या लोक अभियोजक का प्रतिवेदन पेश हुआ है जिसमें अनुसंधान की प्रगति दर्शाई गई है और वे बाध्यताकारी कारण बतलाये हैं जिनके कारण निरोध की अवधि 180 दिन से आगे बढ़ाना आवश्यक है तभी न्यायालय को निरोध की अवधि 180 दिन से आगे बढ़ाना चाहिए। इस न्यायदृष्टांत में यह भी कहा गया है कि लोक अभियोजक का प्रतिवेदन कोई औपचारिकता नहीं है बल्कि एक महत्वपूर्ण प्रतिवेदन होता है जिसको स्वीकार कर लेने का परिणाम यह होता है कि अभियुक्त की स्वतंत्रता प्रभावित होती है इसलिए उक्त शर्तों का कठोरता से पालन होना चाहिए।

इस मामले में यह भी कहा गया है कि केवल समय बढ़ाने का आवेदन जो लोक अभियोजक द्वारा समर्थित हो या उसके माध्यम से पेश किया गया हो वह पर्याप्त नहीं है (बल्कि लोक अभियोजक का एक प्रतिवेदन होना आवश्यक है जिसमें अनुसंधान की प्रगति दर्शाई हो तभी न्यायालय दोनों पक्ष को सुनकर बाध्यताकारी कारण होने पर समय बढ़ा सकती है।)

इस प्रकार जब कभी विशेष न्यायालय के समक्ष धारा 36-ए (4) अधिनियम के परंतुक के अनुसार 180 दिन से अधिक निरोध की अवधि बढ़ाने का आवेदन पेश हो तो उक्त न्यायदृष्टांत संजय केडिया में प्रतिपादित विधि को ध्यान में रखते हुए समय बढ़ाना चाहिए।

यदि न्यायालय 180 दिन के बाद निरोध की अवधि बढ़ाने को उचित नहीं मानती है तब अभियुक्त को जमानत का आलोच्य अधिकार रहेगा और उसे जमानत पर रिहा कर दिया जायेगा।

न्याय दृष्टांत यूनिन ऑफ इंडिया विरुद्ध थामिश्वरसी, 1995 एआईआर एससीडब्ल्यू 2543 के अनुसार धारा 167(2)(i) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रावधान एन.डी.पी.एस.एक्ट के मामले पर भी लागू होते हैं और धारा 37 अधिनियम में जो सीमाएँ जमानत देने पर लगाई गई हैं वे नियत अवधि पर अभियोग पत्र पेश न होने के आधार पर दी जाने वाले बाध्यताकारी जमानत पर लागू नहीं होती हैं।

न्यायदृष्टांत बिपिन शांतिलाल पांचाल विरुद्ध स्टेट ऑफ गुजरात, एआईआर 1996 एससी 2897 तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ के अनुसार भी धारा 167(2) के प्रावधान एन.डी.पी.एस. एक्ट पर भी लागू होते हैं और यदि अभियोजन विहित समय के भीतर अभियोग पत्र प्रस्तुत करने में असफल रहता है तो अभियुक्त को जमानत का अधिकार उत्पन्न हो जाता है।

वाणिज्यिक मात्रा वाले मामले में यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि यदि धारा 36-ए(4) अधिनियम के परंतुक के तहत निरोध की अवधि बढ़ाने के लिए कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत हुआ है तब पहले

उस पर विचार करना चाहिए और उसके अस्वीकार होने के बाद ही अभियुक्त के बाध्यताकारी जमानत पर छोड़े जाने के आवेदन पर विचार करना चाहिए।

मध्यम मात्रा या मिडियम क्वान्टिटी के मामले में क्या धारा 167 (2) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 लागू होगी यह प्रश्न भी उत्पन्न होता है ? और इन मामलों में निरोध की अवधि कितनी मानी जायेगी यह प्रश्न भी उत्पन्न होता है?

मध्यम मात्रा के मामले में धारा 167 (2) (ए) (ii) के अनुसार निरोध की अवधि 60 दिन होगी अर्थात् 60 दिन में अभियोग पत्र प्रस्तुत नहीं होने पर अभियुक्त को जमानत का अधिकार उत्पन्न हो जायेगा।

इस संबंध में न्यायदृष्टांत श्रीमती रमा देवी उर्फ मीना देवी विरुद्ध स्टेट ऑफ़ एम.पी., 2006 (4) एमपीएचटी 1 एनओसी और अनु उर्फ अनील विरुद्ध स्टेट ऑफ़ एम.पी., 2008 (1) एमपीएचटी 286 अवलोकनीय है जिसमें मध्यम मात्रा के गांजे के मामले में निरोध की अवधि 60 दिन मानी जाना प्रतिपादित किया है।

60 दिन या 180 दिन की गणना करते समय गिरफ्तारी का दिन और प्रथम रिमांड जिस दिन दिया गया वह दिन गणना में नहीं लेंगे, जैसा कि न्यायदृष्टांत छगनती सत्यनारायण विरुद्ध स्टेट ऑफ़ आंध्रप्रदेश, एआईआर 1986 एससी 2130 (गिरफ्तारी का दिनांक अपवर्जित करने के बारे में), स्टेट ऑफ़ एमपी विरुद्ध रूस्तम, 1995 एससीसी सप्लीमेंट (3) 221 (रिमांड देने वाला दिन अपवर्जित करने के बारे में) अवलोकनीय है। यही विधि नवीनतम न्यायदृष्टांत रवि प्रकाश सिंह उर्फ अरविंद सिंह विरुद्ध स्टेट ऑफ़ बिहार, एआईआर 2015 एससी 1294 में भी प्रतिपादित की गई है।

अभियुक्त को उक्त जमानत का लाभ लेने के लिए स्वयं आवेदन करना होगा और अभियोग पत्र प्रस्तुत होने के बाद उसे यह लाभ नहीं मिलेगा। यदि आवेदन पहले आ गया हो और अभियोग पत्र बाद में आया हो तो अभियुक्त को यह अधिकार मिलेगा।

जमानत

जमानत के बारे में धारा 37(1)(बी) में यह प्रावधान है कि धारा 19 अथवा धारा 24 अथवा धारा 27—ए के अतर्गत अपराध और वाणिज्यिक मात्रा के संबंध में अपराध में अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर या मुचलके पर तभी छोड़ा जायेगा जब :-

(i) लोक अभियोजक को ऐसे छोड़े जाने के लिए किये गये आवेदन का विरोध करने का अवसर दे दिया गया हो; और

(ii) जहाँ लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है वहाँ न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार है कि अभियुक्त ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर होने के दौरान उसके द्वारा कोई अपराध किये जाने की कोई संभावना नहीं है।

धारा 37 (2) के अनुसार उक्त शर्तें या परिसीमायें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन जमानत की मंजूर करने की परिसीमाओं के अतिरिक्त है।

उक्त प्रावधान अपने आप में स्पष्ट है और इसके अनुसार धारा 37 में जो परिसीमायें दी गई हैं वे केवल वाणिज्यिक मात्रा या उक्त अपराधों के बारे में लागू होती हैं मध्यम मात्रा या लघु मात्रा के मामले में ये परिसीमाएँ लागू नहीं होती हैं धारा 37 की हेडिंग "अपराधों का संज्ञेय और अजमानतीय होना" से भ्रमित नहीं होना चाहिए और यह नहीं मानना चाहिए कि अधिनियम के सभी अपराध अजामनतीय हैं और उन सब में धारा 37 की परिसीमाएँ लागू होती हैं बल्कि धारा 37 की परिसीमाएँ केवल वाणिज्यिक मात्रा और धारा 37 में उल्लेखित अपराधों के लिए हैं।

चूंकि अधिनियम में मध्यम मात्रा या अल्प मात्रा के अपराधों के संबंध में जमानत के कोई प्रावधान नहीं है। अतः धारा 36 (सी) अधिनियम के प्रकाश में दण्ड प्रक्रिया संहिता की द्वितीय अनुसूची लागू होगी।

न्यायदृष्टांत शरद केवट विरुद्ध स्टेट ऑफ मध्यप्रदेश, दण्डक अपील 1795/2001 आदेश दिनांक 09.08.2002 के अनुसार अधिनियम में लघु मात्रा और मध्यम मात्रा के अपराधों के संबंध में जमानत के कोई प्रावधान नहीं होने से दण्ड प्रक्रिया संहिता की द्वितीय अनुसूची लागू होगी। जिसके अनुसार यदि अपराध तीन वर्ष या उससे अधिक किन्तु 7 वर्ष तक के कारावास से दण्डनीय हो तो वह अजमानतीय होगा और तीन वर्ष से कम दण्ड के मामले जमानतीय होंगे।

न्यायदृष्टांत अब्दुल अजीज विरुद्ध स्टेट ऑफ यू.पी., 2002 सीआरएलजे 293 भी इस संबंध में अवलोकनीय है।

इस प्रकार लघु मात्रा के मामले जो तीन वर्ष से कम के कारावास से दण्डनीय हैं वे जमानतीय अपराध होंगे जिनमें धारा 436 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 लागू होगी यह भी ध्यान रखना चाहिए।

न्यायदृष्टांत सुपरिटेण्डेन्ट एनसीबी चेन्नई विरुद्ध आर.पाउल स्वामी, एआईआर 2000 एससी 3661 के अनुसार धारा 52 और 57 का अनुपालन न किया जाना जमानत का आधार नहीं हो सकता है।

न्यायदृष्टांत यूनियन ऑफ इंडिया विरुद्ध रत्न मलिक, एआईआर 2000 एससी (सप्लीमेंट) 1567 के अनुसार धारा 37(1)(बी) में वर्णित परिसीमायें धारा 439 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 में वर्णित परिसीमाओं के अतिरिक्त हैं। अभियुक्त अपराध का दोषी नहीं है यह संतोष युक्तियुक्त आधारों पर आधारित होना चाहिए।

न्यायदृष्टांत एन.आर.मून विरुद्ध मोहम्मद नसीमूदीन (2008) 6 एससीसी 721 के अनुसार धारा 37 में वर्णित परिसीमाओं को विचार में लिये बिना जमानत दी गई है तो वह अवैध और विधि में स्थिर रखे जाने योग्य नहीं हैं। लोक अभियोजक को आपत्ति का अवसर देने के साथ-साथ जो अन्य दो शर्तें हैं वे सुसंगत हैं और ये शर्तें वैकल्पिक नहीं हैं बल्कि दोनों पर संतोष होना चाहिए।

न्यायदृष्टांत कलेक्टर ऑफ कस्टम, नई दिल्ली विरुद्ध ए. नोदिरा, (2004) 3 एससीसी 549 तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ के अनुसार धारा 37 में उल्लेखित शब्द युक्तियुक्त आधार का अर्थ प्रथम दृष्टया आधार से अधिक है।

न्यायदृष्टांत शमीम उल्लाह विरुद्ध सुपरिटेन्डेड एनसीबी, एआईआर 2009 एससी 1357 के अनुसार विश्लेषक के द्वितीय प्रतिवेदन के आधार पर पूर्व से दी गई जमानत निरस्त करना उचित नहीं है।

न्यायदृष्टांत यूनियन ऑफ इंडिया विरुद्ध शिवशंकर कंसारी, (2007) 7 एससीसी 798 के अनुसार धारा 37 (1) (बी) (ii) में दर्शाई शर्तें पूर्ण होना आवश्यक है जमानत देने से पहले न्यायालय को यह निष्कर्ष अभिलिखित करना चाहिए कि अभियुक्त समान अपराध नहीं दोहरायेगा।

न्यायदृष्टांत बबूआ विरुद्ध स्टेट ऑफ उडिसा, एआईआर 2001 एससी 1052 के अनुसार धारा 37 (1)(बी) के प्रावधानों का पालन होना चाहिए और समाज के हित में यही है कि इस अपराध से जुड़े व्यक्ति अभिरक्षा में रहे।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि तीन वर्ष से कम से दण्डनीय अपराध जमानतीय होंगे जबकि तीन वर्ष से सात वर्ष तक के दण्डनीय मामले अजमानतीय होंगे जिनमें दण्ड प्रक्रिया संहिता की द्वितीय अनुसूची लागू होगी। जबकि वाणिज्यिक मात्रा वाले मामले और धारा 19, 24, 27-ए अधिनियम के मामले में धारा 37 (1)(बी) की परिसीमाएँ लागू होंगी। अल्प मात्रा वाले मामले में उनके जमानतीय होने से जमानत अभियुक्त का अधिकार है जबकि मध्यम मात्रा वाले मामले में जमानत देना न्यायालय का विवेकाधिकार है और वाणिज्यिक मात्रा वाले मामले में उक्त धारा 37 की परिसीमाएँ पूर्ण होने पर ही दी जा सकती है अन्यथा नहीं।

प्रसंज्ञान

अधिनियम की धारा 37 (ए)(1) के अनुसार इस अधिनियम के अनुसार दण्डनीय प्रत्येक अपराध संज्ञेय होगा।

धारा 36-ए(1)(डी) के अनुसार विशेष न्यायालय इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध गठित करने वाले तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट के अवलोकन पर या केन्द्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में अधिकृत किये गये अधिकारी की शिकायत पर या परिवाद पर अभियुक्त को विचारण के लिए सुपुर्द किये बिना भी अपराध का संज्ञान कर सकेगा।

यह प्रावधान अपने आप में स्पष्ट है और इसके अनुसार विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय मामलों में सुपुर्दगी या कमीटल आवश्यक नहीं होता है।

धारा 36-ए(2) के अनुसार जब इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध का विचारण किया जा रहा हो तब विशेष न्यायालय उस अपराध के अलावा ऐसे अपराध का भी विचारण कर सकेगा जिसके साथ अभियुक्त दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अनुसार उसी विचारण में आरोपित किया जा सकता था।

यह प्रावधान भी बिल्कुल स्पष्ट है और विशेष न्यायालय को अधिनियम के अलावा उसी विचारण में अन्य अपराध का विचारण करने के लिए सशक्त करता है।

न्यायदृष्टांत स्टेट विरुद्ध कुलवंत सिंह, एआईआर 2003 एससी 1599 के अनुसार नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो के अधिकृत अधिकारी परिवाद प्रस्तुत कर सकते हैं। यह एक वैधानिक निकाय नहीं है बल्कि केन्द्रीय सरकार का एक विभाग है अतः उसके अधिकारियों को धारा 36, 41, 42, 53 और 57 अधिनियम के अधीन अधिकृत करना वैध है।

निलंबन

धारा 32-ए अधिनियम के अनुसार दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 या तत्समय प्रवृत्त अन्य विधि में किसी बात के होते हुए, किन्तु धारा 33 के उपबंधों के अधीन रहते हुए इस अधिनियम के अधीन (धारा 27 से भिन्न) दिये गये किसी दण्डादेश का निलंबन (suspension) परिहार या लघुकरण नहीं किया जायेगा।

न्यायदृष्टांत दादू उर्फ तुलसी दास विरूद्ध स्टेट ऑफ महाराष्ट्र, एआईआर 2000 एससी 3203 तीन न्यायमूर्तिगण पीठ के अनुसार धारा 32-ए जो कि अपील न्यायालय का दण्डादेश निलंबित करने का अधिकार वापस लेती है वह असंवैधानिक है। धारा 389 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 में अपील न्यायालय को अपील लंबित रहने के दौरान दोषसिद्ध अभियुक्त को जमानत पर रिहा करने के लिए सशक्त करता है जबकि धारा 32-ए अधिनियम अपील न्यायालय को इस अधिनियम के अधीन दोषसिद्ध व्यक्ति का दण्डादेश निलंबित करने से पूरी तरह रोक लगाता है जो संवैधानिकता के परीक्षण पर उचित नहीं है क्योंकि यह अपील के एक अधिकार का प्रावधान भी नहीं करता अपील का अधिकार एक वैधानिक अधिकार और तात्विक अधिकार है और उसमें अंतरिम अनुतोष दण्ड के निलंबन देने से रोकना अयुक्तियुक्त, अऋजु संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है क्योंकि अपील के त्वरित निराकरण की कोई प्रक्रिया नहीं है। इस मामले में यह भी कहा गया कि उच्च न्यायालय में दण्डादेश अपील लंबे समय बाद सुनवाई पर आती है।

न्यायदृष्टांत रतन कुमार विश्वास विरूद्ध स्टेट ऑफ यूपी., एआईआर 2009 एससी 581 तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ ने यह प्रतिपादित किया है कि उक्त न्यायदृष्टांत दादू में धारा 32-ए को इस सीमा तक असंवैधानिक बतलाया है कि वह अपील न्यायालय के दण्डादेश स्थगित करने की शक्ति को रोकता है लेकिन इस मामले में यह भी कहा गया है कि अपील न्यायालय द्वारा एक दण्ड केवल तभी स्थगित किया जायेगा जब धारा 37 अधिनियम में दर्शाई शर्तें कठोरता से पूर्ण हो रही हों।

जब एक व्यक्ति को दोषी पा लिया जाता है उसके बाद धारा 37 की यह शर्त की यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार है कि अभियुक्त अपराध का दोषी नहीं है वह पूर्ण होने का प्रश्न ही नहीं होता है अतः उच्च न्यायालय ने दण्ड स्थगित न करने में कोई त्रुटि नहीं की है।

प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या मजिस्ट्रेट द्वारा लघु मात्रा के मामले में यदि दोष सिद्धि की गई है तब वह स्वयं धारा 389 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के तहत इस प्रावधान में वर्णित शर्तें पूर्ण होने पर दण्डादेश निलंबित कर सकता है ?

धारा 32-ए बिल्कुल स्पष्ट है और उसमें यह प्रावधान है कि इस अधिनियम के अधीन दिये गये किसी दण्डादेश का निलंबन दण्ड प्रक्रिया संहिता में वर्णित किसी बात के होते हुए भी नहीं किया जायेगा अतः मजिस्ट्रेट स्वयं अपना दण्डादेश चाहे धारा 389 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की शर्तें पूरी हो रही हों तब भी स्थगित नहीं कर पायेंगे।

प्रश्न – विशेष न्यायाधीश जिनके सामने मजिस्ट्रेट द्वारा पारित निर्णय की अपील प्रस्तुत होती है उनकी क्या स्थिति रहेगी ?

उक्त *न्यायदृष्टांत दादू उर्फ तुलसीदास विरुद्ध स्टेट ऑफ महाराष्ट्र* में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ ने धारा 32-ए को इस सीमा तक असंवैधानिक बतलाया है कि अपील न्यायालय की दण्डादेश स्थगित करने की शक्तियों को कम करता है। चूंकि अल्प मात्रा के मामलों में धारा 37 की परिसीमाएं भी आकर्षित नहीं होती अतः उक्त न्यायदृष्टांत रतन कुमार विश्वास के प्रकाश में भी देखे तो विशेष न्यायधीश महोदय मजिस्ट्रेट द्वारा दिये गये दण्डादेश को स्थगित कर सकते हैं।

दण्ड

अधिनियम की धारा 15(सी), 17(सी), 18(बी), 19, 20(सी), 21(सी), 22(सी), 23(सी), 27-ए, 27-बी आदि में न्यूनतम दण्ड निर्धारित किया गया है। लेकिन किसी भी प्रावधान में अन्य अधिनियमों की तरह ऐसा परंतुक नहीं जोड़ा गया है कि न्यायालय विशेष कारण लिखते हुए न्यूनतम निर्धारित दण्ड से कम दण्ड दे सकेगा। अतः चाहे अभियुक्त वृद्ध हो, महिला हो, रोगी हो या कोई विशेष परिस्थिति हो तब भी न्यायालय को न्यूनतम निर्धारित दण्ड से कम दण्ड देने की शक्ति नहीं है इस बात को विशेष तौर पर ध्यान रखना चाहिए।

धारा 32-बी अधिनियम में यह प्रावधान अवश्य है कि न्यायालय न्यूनतम निर्धारित दण्ड से अधिक दण्ड या अधिक जुर्माना लगाने के लिए कुछ तथ्यों को ध्यान में रखेगा और उस आधार पर न्यूनतम से अधिक दण्ड अधिरोपित कर सकेगा।

अधिनियम में अर्थदण्ड अदा न करने पर चूक में दिये जाने वाले दण्ड का प्रावधान नहीं है लेकिन *न्यायदृष्टांत शांतिलाल विरुद्ध स्टेट ऑफ एम.पी., 2008 सीआरएलजे 368* में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 25 साधारण खण्ड अधिनियम, 1897 का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट किया है कि इस प्रावधान के तहत न्यायालय अर्थ दण्ड जमा न करने पर चूक का दण्ड दे सकती है। सुलभ संदर्भ के लिए धारा 25 साधारण खण्ड अधिनियम, 1897 इस प्रकार है :-

धारा 25. जुर्मानों की वसूली - भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 63 से लेकर 70 तक और जुर्मानों से उद्ग्रहण के लिए वारंटों के निकाले जाने और निष्पादन करने से सम्बन्धित तत्समय प्रवृत्त दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंध किसी भी अधिनियम, विनियम, नियम, या उपविधि के अधीन अधिरोपित सब जुर्मानों को तब के सिवाय लागू होंगे तक कि उस अधिनियम, विनियम, नियम या उपविधि में तत्प्रतिकूल कोई अभिव्यक्त उपबन्ध अन्तर्विष्ट हो।

दण्ड देते समय यह भी ध्यान देना चाहिए कि यदि अपराध वर्ष 2001 में हुए संशोधन के पूर्व का है तब उस समय जो दण्ड विहित था वह दिया जायेगा क्योंकि दण्ड एक तात्विक कानून है प्रक्रियात्मक कानून नहीं है और तात्विक कानून भूतलक्षी नहीं होते हैं जब तक कि इस बारे में विशेष प्रावधान न किया गया हो। इस संबंध में *न्यायदृष्टांत जवाहर सिंह विरुद्ध स्टेट (2009) 6 एससीसी 490 एवं पी.पी. फातिमा विरुद्ध स्टेट ऑफ केरला, (2003) 8 एससीसी 726* अवलोकनीय है।

अधिनियम की धारा 33 में 18 वर्ष से कम उम्र के अभियुक्त पर अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के प्रावधान लागू होने के बारे में है लेकिन ये मामले सामान्यतः किशोर न्यायबोर्ड में जाते हैं। केवल धारा 26 या 27 के अपराध के समय इस प्रावधान को ध्यान में रखना चाहिए।

उपधारणायें

अधिनियम में धारा 35 और धारा 54 में दो उपधारणायें हैं जो इस प्रकार हैं:-

धारा 35. आपराधिक मानसिक दशा की उपधारणा – (1) इस अधिनियम के अधीन किसी ऐसे अपराध के किसी अभियोजन में, जिसमें अभियुक्त की मानसिक दशा अपेक्षित हैं, न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि अभियुक्त की ऐसी मानसिक दशा हैं किन्तु अभियुक्त के लिए यह तथ्य साबित करना एक प्रतिरक्षा होगी कि उस अभियोजन में अपराध के रूप में आरोपित कार्य के बारे में उसकी वैसी मानसिक दशा नहीं थी।

स्पष्टीकरण – इस धारा में “आपराधिक मानसिक दशा” के अन्तर्गत आशय, हेतु, किसी तथ्य का ज्ञान और किसी तथ्य में विश्वास या उस पर विश्वास करने का कारण हैं।

(2) इस धारा के प्रयोजन के लिए कोई तथ्य केवल तभी साबित किया गया कहा जाता है जब न्यायालय युक्तियुक्त संदेह से परे यह विश्वास करे कि वह तथ्य विद्यमान हैं और केवल इस कारण नहीं कि उसकी विद्यमानता अधिसंभाव्यता की प्रबलता के कारण सिद्ध होती हैं।

धारा 54. अवैध वस्तुओं के आधिपत्य से उपधारणा— इस अधिनियम के अन्तर्गत विचारणों में, यह उपधारित किया जा सकेगा, जब तक कि प्रतिकूल सिद्ध न किया जाये, कि अभियुक्त ने इस अधिनियम के अन्तर्गत निम्न के सम्बन्ध में अपराध कारित किया –

(क) किसी स्वापक औषधि अथवा मनः प्रभावी पदार्थ अथवा नियन्त्रित पदार्थ ;

(ख) किसी भूमि पर, जिस पर उसने कृषि की, उस पर उगाये गये किसी अफीम पोस्त, कैनैबिस पौधे अथवा कोका के पौधे;

(ग) किसी स्वापक औषधि अथवा मनः प्रभावी पदार्थ अथवा नियन्त्रित पदार्थ के उत्पादन के लिए विशेष रूप से अपनाये गये किसी समूह अथवा विशेष रूप से बनाये गये कोई बर्तन ; अथवा

(घ) कोई सामग्रियां, जिन पर स्वापक औषधि अथवा मनः प्रभावी पदार्थ अथवा नियन्त्रित पदार्थ के उत्पादन के लिए कोई प्रक्रिया की गई, अथवा सामग्रियों से बचे कोई अवशिष्ट जिससे किसी स्वापक औषधि अथवा मनः प्रभावी पदार्थ अथवा नियन्त्रित पदार्थ को उत्पादित किया गया, आधिपत्य के लिए, जिसके लिए वह सन्तुष्टिपूर्वक हिसाब देने में असफल रहता है।

अवैध तलाशी और उपधारणा

यदि व्यक्ति की तलाशी का मामला हों और धारा 50 अधिनियम के प्रावधान का अनुपालन न किया गया हो तब ऐसी अवैध तलाशी से अभियोजन के पक्ष में धारा 54 अधिनियम की उपधारणा नहीं ली जा सकती है इस संबंध में *न्यायदृष्टांत स्टेट ऑफ पंजाब विरुद्ध बल्देव सिंह, एआईआर 1999 एससी 2378* पांच न्यायमूर्तिगण की पीठ निर्णय चरण 57 (5) अवलोकनीय है।

उपधारणाओं की संवैधानिकता

न्यायदृष्टांत नूर आगा विरूद्ध स्टेट ऑफ पंजाब, एआईआर 2009 एससी (सप्लीमेंट) 852 में यह प्रतिपादित किया गया है कि धारा 35 और धारा 54 अधिनियम की उपधारणायें केवल इस कारण असंवैधानिक नहीं हो जाती कि वे कुछ परिस्थितियों में प्रमाण भार अभियुक्त पर अधिरोपित करती हैं।

जागृत कब्जा

न्यायदृष्टांत मदन लाल विरूद्ध स्टेट ऑफ एच.पी., एआईआर 2003 एससी 3642 के अनुसार सभी अभियुक्त एक ही वाहन में यात्रा कर रहे थे वे एक दूसरे को जानते थे। वे यह स्पष्टीकरण नहीं दे पाये कि वे एक ही वाहन में एक ही स्थान से कैसे यात्रा कर रहे हैं जबकि वाहन लोक वाहन भी नहीं है। ऐसे वाहन से चरस जप्त हुई। यह अभिनिर्धारित किया गया कि अभियुक्तगण का जागृत कब्जा स्थापित होता है। यहाँ तक कि वाहन चालक भी नहीं बच सकता। देहल सिंह विरूद्ध स्टेट ऑफ एच.पी., एआईआर 2010 एससी 3594 भी इस संबंध में अवलोकनीय है जिसमें ऐसे ही तथ्य थे।

न्यायदृष्टांत जगदीश राय विरूद्ध स्टेट ऑफ पंजाब, (2011) 4 एससीसी 571 के मामले में एक मोटर साईकिल पर दो व्यक्ति सवार थे। एक मोटर साईकिल चला रहा था दूसरा पीछे बैठा हुआ था। उस मोटर साईकिल से निषिद्ध पदार्थ अफीम जप्त हुआ दोनों व्यक्तियों ने पुलिस को देखकर भागने का प्रयास किया था दोनों को जागृत कब्जा माना गया और धारा 35 और 54 की उपधारणा ली गई।

न्यायदृष्टांत एन.सी.बी.जोधपुर विरूद्ध मुरलीधर सोनी, (2004) 5 एससीसी 151 के मामले में अभियुक्त स्कूटर पर उसके पिता को ले जा रहा था पिता के पास निषिद्ध पदार्थ जप्त हुआ ऐसी कोई साक्ष्य नहीं थी जो पुत्र के जागृत आधिपत्य को दर्शाती हो पुत्र की भूमिका केवल यह थी कि वह उसके पिता को ले जा रहा था। पुत्र को दोषी नहीं माना गया।

न्यायदृष्टांत हरिसिंह जमुनालाल मीणा और अन्य विरूद्ध स्टेट ऑफ एम.पी., 2002 (3) एमपीएलजे 168 के मामले में अभियुक्त कार में था। उसने पुलिस को देखकर भागने का प्रयास किया। कार की तलाशी से 46 किलो अफीम बरामद हुई। अभियुक्त का मौके से भागना उसके दोषित मन को दर्शाता है। अभियुक्त पर यह प्रमाण भार है कि वह दर्शाये कि कार में रखे अफीम की उसे जानकारी नहीं थी।

इसी मामले में नमूने का वजन घट जाने के कारण उसके साथ छेड़छाड़ का बचाव लिया गया था, जबकि वजन में जो भिन्नता आई थी वह बहुत कम और लगभग नगण्य थी। यह बचाव अमान्य किया गया।

कुलविंदर सिंह सिंह और अन्य विरूद्ध स्टेट ऑफ पंजाब, (2015) 6 एससीसी 674 के अनुसार जागृत अधिपत्य – कैसे निर्णित किया जावे ? जब पुलिस द्वारा ट्रक रोका गया – अभियुक्तगण घटना स्थल से भाग गये उन्होंने ट्रक में लिपट ली थी ऐसा भी उनका बचाव नहीं है—

अभियोजन द्वारा उनकी ट्रक में उपस्थिति प्रमाणित की है – भारी मात्रा (110 थैले पॉपी हक्स वचन 4,180 कि.ग्रा) ट्रक में ले जाया जा रहा था – प्रतिरक्षा का बचाव यह है कि वे अभियुक्तगण केवल ट्रक में जा रहे थे और उन्हें थैलों में रखी सामग्री का ज्ञान नहीं था, –जागृत कब्जा प्रमाणित होना अभिनिर्धारित किया गया –प्रतिरक्षा का बचाव खारीज किया गया।

न्यायदृष्टांत मेघ सिंह विरुद्ध स्टेट ऑफ पंजाब, (2003) 8 एससीसी 666 में शब्द आधिपत्य का अर्थ बतलाया गया और यह प्रतिपादित किया गया कि कब्जा कन्स्ट्रेक्टिव या आन्वयिक भी हो सकता है।

न्यायदृष्टांत अलखराम विरुद्ध स्टेट ऑफ एम.पी., (2004) 1 एससीसी 766 के अनुसार यदि प्राकृतिक रूप से पौधे उग आते हैं तो इसे गांजे के पौधे की खेती नहीं माना जा सकता।

न्यायदृष्टांत बहादुर सिंह विरुद्ध स्टेट ऑफ हरियाणा, (2010) 4 एससीसी 445 के अनुसार 6 थैले जिनमें प्रत्येक में 32 किलो पॉपी हस्क था। वह अभियुक्त के परिसर से एक कमरे में भूसे के नीचे से बरामद हुये जिस कमरे को अभियुक्त ने उसके आधिपत्य में रखी चाबी से खोला था धारा 15 अधिनियम के अंतर्गत दोषसिद्धि उचित मानी गई।

न्यायदृष्टांत स्टेट ऑफ पंजाब विरुद्ध लखविन्दर सिंह, एआईआर 2010 एससी 1557 के मामले में अभियुक्त पॉपी हस्क के थैलों पर बैठा पाया गया और पुलिस को देखकर थैलों के पीछे छुपने का प्रयास किया। संतोषजनक स्पष्टीकरण के अभाव में यह आचरण दोषी मन को दर्शाता है।

इस मामले में यह भी प्रतिपादित किया की केवल विलंब से नमूने जाँच के लिए भेजना यह अनुमान निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है कि नमूने के साथ छोड़छाड़ की गई हो जबकि रसायनिक प्रतिवेदन में नमूने साबूत या अक्षुण पाया जाने का उल्लेख है। मोहन लाल विरुद्ध स्टेट ऑफ राजस्थान, एआईआर 2015 एससी 2098 के अनुसार :

बरामद सामग्रियों को रासायनिक परीक्षण के लिये भेजने में देरी – एफ.एस.एल. प्रतिवेदन में यह उल्लेख है की सीलबंद पैकेट प्राप्त हुये सील साबूत (अक्षुण्ण) पाई गई – उसके साथ (जब्त सामग्री के साथ) छोड़छाड़ करने के बारे में कोई साक्ष नहीं थी – अभिनिर्धारित किया गया 40 दिन का विलंब अतात्विक है।

न्यायदृष्टांत देहल सिंह विरुद्ध स्टेट ऑफ एच.पी., एआईआर 2010 एससी 3594 के मामले में तलाशी और जप्ती के समय लिये गये नमुने को एक किराना दुकान से लाये गये तराजु में तौला गया उसी नमूने को जब प्रयोग शाला में तौला गया तब 15 ग्राम वजन अधिक पाया गया यह अभिनिर्धारित किया गया कि इन परिस्थितियों में वजन का अंतर अभियोजन के मामले को प्रभावित नहीं करता है।

इस प्रकार निरोध या अभिरक्षा, जमानत प्रसंज्ञान, दण्डादेश व उसका निलंबन, उपधारणाओं आदि के बारे में उपरोक्त प्रावधानों और वैधानिक स्थितियों को ध्यान में रखा जाये तो त्रुटि होने की संभावना नहीं रहती है और न्यायालय का समय अनावश्यक नष्ट नहीं होता है।

•

एन.डी.पी.एस. एक्ट के तहत आपराधिक मामलों में जप्त संपत्ति की अभिरक्षा, विचारण पूर्व व पश्चात् व्ययन

श्रीमती ममता जैन,
विशेष न्यायाधीश (एन.डी.पी.एस.),
जबलपुर

चूंकि एन.डी.पी.एस.एक्ट (संक्षिप्त में अधिनियम) के अधीन अभिगृहीत संपत्ति की अभिरक्षा और विचारण उपरांत व्ययन संबंधी बिन्दु प्रकरण की लंबित से भी संबंधित है, जबकि विचारण पूर्व संपत्ति का व्ययन यानि प्रि-ट्रायल डिस्पोजल प्रकरण के विचारण से संबंधित नहीं है। ऐसी स्थिति में संपत्ति की अभिरक्षा और विचारण उपरांत व्ययन के बिन्दुओं पर विश्लेषण के पूर्व विचारण पूर्व संपत्ति के व्ययन यानि प्रि-ट्रायल डिस्पोजल के बिन्दु पर विचार किया जाना उचित होगा।

प्रि-ट्रायल डिस्पोजल : एक नजर

विचारण पूर्व संपत्ति के व्ययन के संबंध में अधिनियम की धारा 52-ए वर्ष 1989 के संशोधन द्वारा अधिनियम में समाहित की गई है, जिसमें 10 मार्च 2014 को संशोधन किया गया। यह धारा निम्नानुसार प्रावधान करती है-

“(1) The Central government may, having regard to the hazardous nature, vulnerability to theft, substitution, constraint of proper storage space or any other relevant consideration, in respect of any narcotic drugs, psychotropic substances, controlled substances or conveyances, by notification in the Official Gazette, specify such narcotic drugs, psychotropic substances, controlled substances or conveyance or class of narcotic drugs, class of psychotropic substances, class of controlled substances or conveyances, which shall, as soon as may be after their seizure be disposed of by such officer and in such manner as that Government may, from time to time, determine after following the procedure hereinafter specified.

(2) Where any narcotic drug or psychotropic substances, controlled substances or conveyances, has been seized and forwarded to the officer-in-charge of the nearest police station or to the officer empowered under Sec. 53, the officer referred to in Sub-sec. (1) shall prepare an inventory of such narcotic drugs or psychotropic substances, controlled substances or conveyances, containing such details relating to their description, quality, quantity, mode of packing, marks, numbers or such other identifying

particulars of the narcotic drugs or psychotropic substances, controlled substances or conveyances, or the packing in which they are packed, country of origin and other particulars as the officer referred to in Sub-sec. (1) may consider relevant to the identity of the drugs or psychotropic substances, controlled substances or conveyances, in any proceedings under this Act and make an application, to any Magistrate for the purpose of,-

- (a) A certifying the correctness of inventory so prepared; or
- (b) taking, in the presence of such Magistrate, photographs of such drugs, substances, controlled substances or conveyances, and certifying such photographs as true; or
- (c) allowing to draw representative samples of such drugs or psychotropic substances, controlled substances or conveyances, in the presence of such Magistrate and certifying the correctness of any list of samples so drawn.

(3) Where an application is made under Sub-sec. (2), the Magistrate shall, as soon as may be, allowed the application.

(4) Notwithstanding anything contained in the Indian Evidence Act, 1872 (1 of 1872) or the Code of Criminal Procedure, 1973 (2 of 1974), every Court trying an offence under this Act, shall treat the inventory, the photographs of narcotic drugs, psychotropic substances, controlled substances or conveyances, and any list of samples drawn under Sub-sec. (2) and certified by the Magistrate, as primary evidence in respect of such offence.”

आवश्यकता क्यों ?

- (अ) जप्त सामग्री की चोरी, मात्रा में कमी की संभावना,
- (ब) दुष्प्रकृति के पदार्थों के स्टोरेज में आने वाली परेशानी,
- (स) जप्तशुदा सामग्री के दुरुपयोग की आशंका,
- (द) लंबे समय तक स्टोरेज में रहने के कारण उसके मूल्य में होने वाली कमी ।

अर्थान्वयन

न्यायदृष्टांत निर्मल व अन्य बनाम म.प्र. राज्य 2009 (1) ई.एफ.आर. 428 [ILR(2009)MP 848] में अवधारित स्थिति अनुसार अधिनियम की धारा 52-ए के तहत “व्ययन” स आशय “अंतिम व्ययन” से तथा “मजिस्ट्रेट” से आशय दण्ड कार्यपालक मजिस्ट्रेट या न्यायिक मजिस्ट्रेट से है।

प्रि-ट्रायल डिस्पोजल – कब व उद्देश्य ?

धारा 52-ए के अनुसार अभिग्रहण के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र (as soon as may be after their seizure) विनिर्दिष्ट प्रक्रिया का अनुसरण करने के बाद संपत्ति के व्ययन का प्रावधान है। न्यायदृष्टांत शकील बनाम म.प्र. राज्य, 2009 (1) ई.एफ.आर. 300 = 2009(1) एम.पी.एच.टी. 313 में अवधारित किया गया है कि उक्त प्रावधान सामान्यतः अभिग्रहण के शीघ्र पश्चात् उपयोग के लिए हैं।

न्यायदृष्टांत नसीर गनीभाई बनाम गुजरात राज्य 2004 क्रि.लॉ ज. 5049 (डी.बी.) में इस बिंदु पर विचार कर व्यक्त किया गया कि – “Provision of Section 52-A applies only when muddemal article is required to be disposed of before trial and not when it is required to be preserved till conclusion of trial. Muddemal articles did not dispose of at the stage of investigation then no question arise to follow said procedure”.

न्यायदृष्टांत निर्मल व अन्य बनाम म.प्र. राज्य (पूर्वोक्त) में उक्त प्रावधान के उद्देश्य बाबत मत लिया गया है कि – “The purpose of Section 52 – A of “the Act” is to allow the disposal of the property at the earliest point of time during the course of investigation so that same may not be vulnerable to theft, substitution, constraints of proper storage, space or any other kind of distinction, after following the procedure mentioned in sub-section (2) of Section 52-A of “the Act”. इस तरह धारा 52-ए का उद्देश्य मादक पदार्थ की जप्ती के यथाशीघ्र बाद व मामले के विचारण के पूर्व यथासंभव जप्त मादक पदार्थ का नष्टीकरण है।

प्रकृति आदेशात्मक या निर्देशात्मक ?

अधिनियम की धारा 52-ए के तहत कार्यवाही नहीं की गई तो उससे विचारण दूषित नहीं होगा, किंतु वैसी दशा में मादक पदार्थ की संपूर्ण मात्रा न्यायालय के समक्ष साक्ष्य के दौरान पेश होनी आवश्यक होगी अन्यथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 (जी) के तहत विपरीत उपधारणा की जायेगी (नूरआगा बनाम पंजाब राज्य ए.आई. आर. 2008 एस.सी.(सप्ली.) 852)। इसके विपरीत यदि अधिनियम की धारा 52-ए के तहत कार्यवाही की गई है, तो निकाले गये नमूने, फोटोचित्र, नमूने की सूची, मजिस्ट्रेट द्वारा प्रमाणित तालिका पेश करनी होगी और उसे अधिनियम की धारा 52-ए (4) के तहत प्राथमिक साक्ष्य माना जायेगा। विनष्टीकरण का तथ्य साबित करना होगा व अधिनियम की धारा 52-ए के तहत कार्यवाही करने वाले मजिस्ट्रेट की साक्ष्य भी आवश्यक होगी। इस तरह अधिनियम की धारा 52-ए के तहत कार्यवाही न होने पर विचारण दूषित नहीं होगा व इस प्रावधान की प्रकृति आदेशात्मक न होकर निर्देशात्मक है।

उक्त बिंदु पर कुछ न्यायदृष्टांत

- ③ *State of Punjab v. Makhan Chand, 2004 CRI. L. J. 5018 (SC)* “Non- compliance of procedure for drawing samples prescribed by Govt. under S. 52-A does not vitiate trial. Section 52-A does not empower Govt. to lay down procedure

- for search of accused but, deals only with disposal of seized narcotic drugs and psychotropic substances”.
- ③ *Devendra Kumar Misra v. State of U. P., 1998 CRI. L. J. 2348 (ALL.)* Non - compliance with procedure under Section 52-A would not render search and seizure illegal nor would it degenerate of contraband into being inadmissible in evidence.
 - ③ *Rifakatali Khan v. State of Maharashtra, 1993 CRI. L. J. 3844 (Bom.) (DB)* Provisions of S.52, S.52A, S.55 and S.57 are directory. Mere non-compliance of procedural safeguard would not vitiate trial, if there is no miscarriage of justice.
 - ③ *Parshotam Lal and others, Petitioners v. State, 2001 CRI. L.J. 3378* - Provisions of S.52, S.52A, S.57 are not mandatory.

अधिसूचनायें

अधिनियम की धारा 52-ए (1) के तहत प्रदत्त अधिकारों का उपयोग करते हुए भारत शासन द्वारा दिनांक 13.06.1989 को स्टेंडिंग ऑर्डर 1/89 जारी किया गया था। तदोपरांत अधिसूचना क्रमांक जी.एस.आर. 339 दिनांक 10.05.2007 जारी की गई और अभी हाल ही में नोटिफिकेशन क्र. जी.एस.आर. 38 (E) दिनांकित 16.01.2015 जारी किया गया है। इस नोटिफिकेशन के क्रमांक 2 अनुसार समस्त प्रतिबंधित स्वापक औषधियां (Narcotic Drugs), मनः प्रभावी पदार्थ (Psychotropic substances), नियंत्रित पदार्थ (Controlled substances) एवं प्रवहणों (Conveyances) का धारा 52-ए के तहत व्ययन किया जावेगा।

ड्रग डिस्पोजल कमेटी के गठन के बारे में वर्ष 2015 के नोटिफिकेशन के क्रमांक 5 में निम्नानुसार व्यवस्था की गई है –

5. Drug Disposal Committee – “The Head of the Department of each Central and State drug law enforcement agency shall constitute one or more Drug Disposal Committees comprising three members each which shall be headed by an officer not below the rank of Superintendent of Police, Joint Commissioner of Customs and Central Excise, joint Director of Directorate of Revenue Intelligence of officers of equivalent rank and every such Committee shall be directly responsible to the Head of the Department.

उक्त नोटिफिकेशन के क्रमांक 6 एवं 7 में क्रमशः ड्रग डिस्पोजल कमेटी के द्वारा किये जाने वाले कार्य और प्रक्रिया विहित की गई है। किस कीमत और मात्रा तक के मादक पदार्थों का विनिष्टीकरण ड्रग डिस्पोजल कमेटी द्वारा किया जा सकता है, उनका उल्लेख उक्त नोटिफिकेशन क्रमांक 8 में निम्नानुसार किया गया है—

Sl. No.	Name of drug	Quantity per consignment
1.	Heroin	5 Kg.
2.	Hashish (Charas)	100 Kg.
3.	Hashish oil	20 Kg.
4.	Ganja	1000 Kg.
5.	Cocaine	2 Kg.
6.	Mandrax	3000 Kg.
7.	Poppy Straw	Up to 10 MT.
8.	Other narcotic drugs, psychotropic substances, controlled substances or conveyances	Up to the value of Rs. 20 lakh.

यदि अभिगृहीत संपत्ति उक्त दर्शाई गई मात्रा या कीमत से अधिक मात्रा या कीमत की है तो इस संबंध में नोटिफिकेशन वर्ष 2015 के क्रमांक 8 का परंतुक उसका व्ययन उच्च स्तरीय ड्रग डिस्पोजल कमेटी द्वारा कराये जाने बाबत निम्नानुसार प्रावधान करता है— “Provided that if the consignments are larger in quantity or of higher value than those indicated in the Table, the Drug Disposal Committee shall sent its recommendations to the Head of the Department who shall order their disposal by a high level Drug Disposal Committee specially constituted for this purpose”.

ड्रग्स के डिस्पोजल के ढग, प्रक्रिया और तरीके के बारे में उक्त नोटिफिकेशन के क्रमांक 4, 7 और 9 (क्रमशः) में दर्शाया गया है। स्टैंडिंग आर्डर 1/89 एवं वर्ष 2007 के नोटिफिकेशंस में दिये गये दिशा निर्देशों के तारतम्य में दिनांक 03.07.2010, 31.08.2010 को पुलिस मुख्यालय भोपाल द्वारा ड्रग विनष्टीकरण और उच्च स्तरीय डंग विनष्टीकरण समितियों का गठन सम्पूर्ण मध्यप्रदेश राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में अधिनियम के अधीन विभिन्न प्रकरणों में अभिगृहीत मादक पदार्थों के विनष्टीकरण हेतु किया जा चुका है। वर्ष 2015 के नोटिफिकेशन के आलोक में ड्रग विनष्टीकरण समितियों के गठन का आदेश प्रतीक्षित है।

कार्यवाही आरंभ करने के लिये सक्षम अधिकारी

अधिनियम की धारा 52-ए के तहत कौन अधिकारी कार्यवाहियां आरंभ करेगा, इस संबंध में वर्ष 2015 के नोटिफिकेशन के क्लॉज 3 में निम्नानुसार व्यवस्था की गई है— *“Any officer in-charge of a police station or any officer empowered under S.53 of the said Act shall initiate action for disposal of narcotic drugs, psychotropic substances, controlled substances or conveyances under s. 52-A of that Act”.*

न्यायालय की अनुमति— कब आवश्यक ?

अधिनियम की धारा 52-ए (3) स्पष्टतः उल्लेख करती है कि जब उपधारा (2) के तहत कोई आवेदन मजिस्ट्रेट को किया जाता है, वहां ऐसा मजिस्ट्रेट यथाशक्य शीघ्र ऐसा आवेदन मंजूर करेगा। इस प्रावधान में कहीं भी ऐसी अपेक्षा नहीं है कि मजिस्ट्रेट द्वारा की जाने वाली कार्यवाही के पूर्व संबंधित न्यायालय की अनुमति ली जाए। बल्कि धारा 52-ए में उल्लिखित शब्द "Shall" से मजिस्ट्रेट के लिए यह बाध्यकर है कि जैसे ही कोई आवेदन उपधारा (2) के तहत उसे किया जाता है, वहां उसे ऐसा आवेदन मंजूर करना है किन्तु यदि मादक पदार्थ विनष्टीकृत किया जाना है तो उसके लिए उक्त स्टैंडिंग ऑर्डर में दिये गये दिशा निर्देशों के तहत न्यायालय का पूर्व अनुमोदन/अनुमति अपेक्षित है, क्योंकि स्टैंडिंग आर्डर 1/89 के क्रमांक 4.6 और वर्ष 2007 के नोटिफिकेशन के क्रमांक 4.1.2 में स्पष्टतः ड्रग विनष्टीकरण के पूर्व ड्रग विनष्टीकरण समिति द्वारा न्यायालय की अनुमति/अनुमोदन हो चुकने के तथ्य की संतुष्टि कर लिये जाने का उल्लेख है। वर्ष 2015 के नोटिफिकेशन में ड्रग विनष्टीकरण के पूर्व ड्रग विनष्टीकरण समिति द्वारा न्यायालय की अनुमति/अनुमोदन बावत् कोई उल्लेख नहीं है। उक्त नोटिफिकेशन के क्रमांक 4 अनुसार एफ.एस.एल. रिपोर्ट प्राप्ति के 30 दिवस के अंदर मजिस्ट्रेट को धारा 52-ए की उपधारा 2 के तहत आवेदन देने का प्रावधान किया गया है।

Mode of disposal of drugs on which court's orders are obtained (वर्ष 2007 के नोटिफिकेशन का क्रमांक 4.6).

After the court orders are passed for pre-trial disposal of drugs, those drugs which have no legitimate value (excepting opium, morphine, codeine and thebaine, which are required to be transferred to the Government Opium and Alkaloid works undertaking at Ghazipur of Neemuch, as the case may be) are required to be destroyed consistent with the guidelines issued under this order and not repugnant to the court's order. (words "approval of the court" have been mentioned in clause 4.1.2 of the Standing order 1/89).

Certificate of destruction

(Clause 11 of Not. 2015)- (same provisions are in 6.0 of standing order 1/89 and 4.4 of Not. 2007)-

"A certificate of destruction (in triplicate) containing all the relevant data like godown entry no, gross and net weight of the items seized etc., shall be prepared and signed by the chairman and members of the Drug Disposal Committee as per format at Annexure 3 and the original copy shall be pasted in the godown register after making necessary entries to this effect, the duplicate to be retained in the seizure case file and the triplicate copy will be kept by the Drug Disposal Committee".

Conclusion

- (1) प्रि-ट्रायल डिस्पोजल की कार्यवाही सम्पत्ति जप्ती के यथाशीघ्र बाद की जावेगी।
- (2) ऐसा व्ययन अधिनियम की धारा 52-ए में दर्शाई गई प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात् किया जावेगा।
- (3) सम्पत्ति अभिगृहण के पश्चात् थाने का भारसाधक अधिकारी या धारा 53 के अधीन सशक्त अधिकारी अपराध क्रमांक, अभियुक्त का नाम, विवरण, सम्पत्ति का विवरण आदि के संबंध में एक तालिका (इन्वेन्ट्री) तैयार करेगा और वह इन्वेन्ट्री सही होना प्रमाणित करने के लिए, फोटोग्राफ्स लेने के लिए व फोटोग्राफ्स को सही होना प्रमाणित करने के लिए, प्रतिनिधि नमूने लिये जाने की अनुज्ञा देने के लिए और उनका सही होना प्रमाणित करने के लिए एक आवेदन में मजिस्ट्रेट को देगा।
- (4) मजिस्ट्रेट को आवेदन देने के लिए न्यायालय की पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं है, किन्तु ड्रग विनष्टीकरण किये जाने के लिए ऐसी अनुमति दी जा सकती है।
- (5) धारा 52-ए के प्रावधान निर्देशात्मक प्रकृति के है अर्थात् यदि उक्त कार्यवाही नहीं की गई तो उससे विचारण दूषित नहीं होगा।
- (6) यदि अधिनियम की धारा 52-ए के तहत संपत्ति के विनष्टीकरण करने की कार्यवाही की गई है तो उस तथ्य को साबित करना होगा, साथ ही कार्यपालक मजिस्ट्रेट की साक्ष्य भी उनके द्वारा की गई कार्यवाही के संबंध में करवानी होगी। (ताहिर उर्फ नारू बनाम भारत संघ 2007 ए.एन.जे. 4091)
- (7) यदि अधिनियम की धारा 52-ए के तहत कार्यवाही नहीं की गई है तो मामला साबित करने के लिए जब्तशुदा मादक पदार्थ न्यायालय के समक्ष पेश करना होगा, अन्यथा साक्ष्य अधिनियम 114 जी के तहत विपरीत उपधारणा की जावेगी। (जितेन्द्र व एक अन्य बनाम म.प्र. राज्य ए.आई.आर. 2003 सु.को. 4236, नूरआगा बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 2008 एस.सी. (सप्ली.) 852, अशोक उर्फ डांगरा जायसवाल बनाम म.प्र. राज्य (2011) 5 सु.को. केसेस 123 व लक्ष्मीनारायण बनाम म.प्र. राज्य 2010 ई.एफ.आर. 131 (ILR (2009)MP 2652)

विनष्टीकरण के लिये न्यायालय के आदेश का एक प्रारूप

आरक्षी केंद्र जबलपुर से ने उपस्थित होकर एक आवेदन क्रमांक
..... दिनांक उक्त आरक्षी केंद्र के अपराध क्रमांक अंतर्गत धारा
एन.डी.पी.एस. एक्ट की केस डायरी के साथ इस प्रकरण में जप्त मादक पदार्थ के
विनष्टीकरण किए जाने की अनुमति देने बाबत प्रस्तुत किया।

आवेदन के साथ एफ.आई.आर., जप्ती पत्रक, एफ.एस.एल.रिपोर्ट, कार्यपालक मजिस्ट्रेट को धारा 52-ए की कार्यवाही किये जाने हेतु दिया गया आवेदन-पत्र, लिए गए छायाचित्र, उक्त कार्यवाही में कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा विधिवत नमूने निकालने एवं सीलबंद किए जाने संबंधी आदेश पत्रिका, अनुक्रमणिका, धारा 52 ए (3) का कार्यपालक मजि. का प्रमाण (समस्त फोटो प्रतियां) पेश किये गये हैं, जिनके मूल दस्तावेज केस डायरी में संलग्न हैं।

आवेदन पर सुना गया

उक्त आवेदन अनुसार प्रकरण में जप्तशुदा मुद्देमाल में से मौके पर व तत्पश्चात् धारा 52-ए की कार्यवाही में निकाले गये नमूनों के पश्चात् शेष बचे मादक पदार्थ कुलके विनष्टीकरण किये जाने की अनुमति इस न्यायालय से चाही गई है।

जप्त बताये गये मादक पदार्थ कुल में से दो सेंपल मौके पर व दो सेंपल धारा 52-ए एन.डी.पी.एस.एक्ट की कार्यवाही में निकाले जा चुके हैं। शेष बचे मादक पदार्थ के दुरुपयोग होने या चोरी होने की संभावना, अनुसंधान और विचारण में लगने वाले समय में माल विघटित होने या उसका मूल्य कम होने की संभावना हो सकती है। यदि किसी कारण जप्तशुदा मादक पदार्थ के पुनः रासायनिक जांच की अवस्था आती भी है, तो उक्त कार्य हेतु मूल सम्पत्ति का अंश यानि कार्यपालक मजि. द्वारा निकाले गये नमूने उपलब्ध हैं।

उक्त सारी स्थितियों में न्यायोचित प्रतीत होने से उक्त आवेदन स्वीकार कर शेष बचे मादक पदार्थ के विनष्टीकरण किये जाने का अनुमोदन किया जाता है। विनष्टीकरण के संबंध में नोटिफिकेशन क्रमांक जी.एस.आर. 38 (E) दिनांकित 16.01.2015 के निर्देशों का पालन किया जाना व विनष्टीकरण पश्चात् विनष्टीकरण के प्रमाण पत्र की एक प्रतिलिपि न्यायालय में प्रस्तुत किया जाना सुनिश्चित किया जाए।

केस डायरी इस आदेश पत्रिका की प्रति सहित उक्तकृ को लौटाई जावे।

प्रकरण पूर्ववत् को पेश किया जावे।

विशेष न्यायाधीश,

एन.डी.पी.एस. एक्ट, जबलपुर, म.प्र.

प्रतिलिपि:—

थाना को केस डायरी सहित सूचनार्थ प्रेषित।

स्टोरेज (Storage)

स्टोरेज के संबंध में अधिनियम की धारा 52 (2), (3), (4), 55, 60, 61 व 62 के प्रावधानों को देखना सुसंगत होगा, क्योंकि धारा 52 से ही जप्त संपत्ति की अभिरक्षा व स्टोरेज की स्थिति आरंभ हो जाती है।

अधिनियम की धारा 52 के अनुसार यदि सम्पत्ति का अभिग्रहण धारा 41 (1) के अधीन सर्च वारण्ट जारी करने पर हुआ है तो न सिर्फ गिरफ्तार व्यक्ति को वरन अभिगृहीत प्रत्येक वस्तु को अनावश्यक विलम्ब के बिना सर्च वारण्ट जारी करने वाले मजिस्ट्रेट के पास भेजा जायेगा एवं धारा 41 (1), 42, 43 या 44 के अधीन गिरफ्तार व्यक्ति व अभिगृहीत वस्तु को निकटतम पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को या धारा 53 के अधीन सशक्त अधिकारी को भेजा जायेगा जो उनके विधिनुसार निपटारे के लिये आवश्यक उपाय करेंगे।

धारा 55 का सार है कि पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी अभिगृहीत वस्तुओं को उसे परिदत्त किये जाने पर अपने भारसाधन में लेगा व उन्हें सुरक्षित अभिरक्षा में रखेगा। वह किसी ऐसे अधिकारी को, जो ऐसी सभी वस्तुओं को पुलिस थाने तक ले जाये या इस प्रयोजन के लिये तैनात किया जाये, ऐसी वस्तुओं पर अपनी मुद्रा लगाने के लिये या उनमें से नमूना लेने के लिये अनुमति देगा तथा इस प्रकार लिये गये सभी नमूने भी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी की मुद्रा से मुद्रांकित किये जावेगें।

धारा 52 व 55 – उद्देश्य व प्रकृति

इन प्रावधानों का उद्देश्य मादक पदार्थ की सीलिंग व उसमें छेड़छाड़ की संभावना को परे करना है व इनकी प्रकृति निदेशात्मक है।

Provisions of S.52 are not mandatory. (*State of Punjab vs. Balbir Singh AIR 1994 SC1872, Salamat Ali vs. State of MP 1994 MPLJ 68, Parshotam Lal v. State 2001 CRI. L. J. 3378 (J&K) and Palayan v. State of Kerala 2002 CRI. L. J. 4454*) *Ouseph v. State of Kerala, (2004) 10 SCC 647-* “Under the provisions of Section 55 of the Act, the requirement may not be mandatory. (Same view in *Fredrick George v. State of Himachal Pradesh 2002 CRI. L. J. 4600, Palayan v. State of Kerala 2002 CRI. L. J. 4454, Sajjan Kumar vs. Union of India 2006 (1) EFR 447, Arif Khan v. State of Uttaranchal 2006 CRI. L. J. 4564 and Ram Prakash Giri v. State of Bihar 2013 CRI. L. J. 2724*) अतः यह स्पष्ट है कि उक्त दोनों ही प्रावधानों की प्रकृति आदेशात्मक नहीं है बल्कि निर्देशात्मक है और यदि उक्त प्रावधानों का पालन नहीं किया गया तो उस आधार पर विचारण दूषित नहीं होगा। यदि अधिनियम की धारा 55 का पालन नहीं किया गया है या सम्पत्ति का नमूना विलम्ब से एफ.एस.एल. भेजा गया है किन्तु जब अभिगृहीत सम्पत्ति की सुरक्षित अभिरक्षा साबित है तो भी दोषसिद्धि की जा सकती है। (राजस्थान राज्य बनाम दौल उर्फ दौलत गिरि ए.आई.आर 2009 सु.को. (सप्ली.) (1592).

उक्त बिंदु पर कुछ न्यायदृष्टांत

- ③ *Hardip Singh v. State of Punjab AIR 2009 S.C.432* “Clear evidence of S.H.O. that so long said articles remained in his custody and possession, they were not tampered with & Fact that S.H.O. has not put his seal on sample & Cannot be said to have prejudiced accused & Cannot be ground for acquittal of accused”.

- ③ *State of Orissa v. Kanduri Sahoo AIR 2004 S.C. 833 = 2003 AIR SCW 7054 & Safe custody of articles for period of 4 days, stand sufficiently explained & Acquittal of accused merely on ground that there was order of trial Court that articles were to be kept in Excise Malkhana & Not proper & Conviction restored.*
- ③ *Valsala v. State of Kerala AIR 1994 S.C.117 = 1993 AIR SCW 3750 Delay of more than three months in sending seized article to Court & No evidence to show that article was sealed and kept in proper custody in police station & Sending of the very article seized to chemical examiner, highly doubtful & Conviction cannot be sustained.*

धारा 55 की कार्यवाही के दौरान अभियुक्त की मौजूदगी— क्या आवश्यक ?

यदि जप्ती की कार्यवाही के दौरान किसी कारणवश नमूने नहीं निकाले जा सके हैं व संपत्ति थाने लाये जाने पर नमूने निकाले जाते हैं या फिर अन्यथा भी उन आर्टिकल्स को यथावत पुनः सील करने के बजाय धारा 55 के तहत नमूने निकाले जाते हैं तो उस समय अभियुक्त की मौजूदगी आवश्यक है। (आनंद बैरागी बनाम म.प्र. राज्य 2004 (1) एम.पी.एच.टी. 351)

धारा 55 के प्रावधान कब लागू नहीं

धारा 55 वहां लागू नहीं होती, जहां कार्यवाहियां पुलिस स्टेशन के अधिकारी से संबंधित न होकर अधिनियम की धारा 53 के अधीन सशक्त अधिकारी द्वारा की गई है। (कर्नेलसिंह बनाम राजस्थान राज्य (2000) 7 एस.सी.सी. 632 ;2000) *AIR SCW 3296*] "Officer-in-charge of police station" is distinct agency than "officers" contemplated under S. 53 of the Act. Arrested person and seized articles forwarded under S.52(3) (b) to officer empowered under S. 53 of Act & Mandate of S. 55 need not be complied with".

अंतरिम अभिरक्षा

सामान्यतः चालान पेश होने तक सम्पत्ति थाने के मालखाने में सुरक्षित रखी जाना चाहिए और चालान पेश होने पर यथासंभव शीघ्र अवसर पर न्यायालय में पेश होनी चाहिए। यहां धारा 60 से 62 का अवलोकन सुसंगत होगा।

धारा 60 का सार है कि जब भी अधिनियम के अधीन दंडित करने योग्य कोई अपराध कारित किया गया है तो समस्त स्वापक औषधि व मनः प्रभावी पदार्थ व नियंत्रित पदार्थ, बर्तन, पात्र, पैकेज, जीवजंतु, प्रवहण (conveyance), जिनके संबंध में या जिनके माध्यम से वह अपराध कारित किया गया है, अधिहरणीय (liable to confiscation) होंगे किंतु यदि जीवजंतु या प्रवहण का स्वामी यह साबित कर देता है उसका इस प्रकार उपयोग स्वयं स्वामी या उसके अभिकर्ता या उस जीवजंतु या प्रवहण के भारसाधक व्यक्ति के ज्ञान या मौनानुकूलता (connivance) के बिना किया गया था व उनमें से प्रत्येक ने ऐसे उपयोग के विरुद्ध सभी समुचित पूर्वावधानियां बरती थीं। धारा 61 के अनुसार वह माल, जो अवैध औषधि या उक्त जैसे मादक पदार्थ को छिपाने के लिये उपयोग में लाया गया,

भी अधिहरणीय (liable to confiscation) होगा। धारा 62 के अनुसार यदि स्वापक औषधि या मनःप्रभावी पदार्थ या नियंत्रित पदार्थ का विक्रय किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाता है जिसको यह ज्ञान है या विश्वास करने का कारण है कि ऐसी औषधि या पदार्थ अधिनियम के तहत अधिहरणीय है वहां उसके विक्रय के आगम (sale proceeds) भी अधिहरणीय होंगे।

उक्त अनुसार मादक पदार्थों से संबंधित अपराधों में अभिगृहीत सम्पत्ति अधिहरणीय होती है किंतु जब सामग्री वाहन आदि को अंतरिम सुपुर्दगी पर इस बात के होते हुए सौंपा जा सकता है कि वह अधिनियम की धारा 60 के तहत राजसात किये जाने योग्य है और उसे इस आधार पर देने से इंकार नहीं किया जा सकता कि वाहन समपहरण के लिए दायी हो सकता है। (खलील अहमद बनाम स्टेट ऑफ एम. पी., 2000(1) म.प्र. वी.नो. 217 म.प्र., यदविंदर सिंह बनाम म.प्र. राज्य व अन्य, 2011 (4) एम.पी.एच.टी. 171, गंगा हायर परचेज प्रा.लि. बनाम पंजाब राज्य व अन्य, (1991) 5 एस.सी.सी. 670) इस संबंध में न्यायदृष्टांत सुंदरभाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य, ए.आई.आर. 2003 सुप्रीमकोर्ट 638 में दिये गये दिशानिर्देशों का पालन करना चाहिए।

अधिनियम में वर्णित कठोर दंडादेश व प्रक्रियात्मक व्यवस्थाओं को देखते हुये अपराधों में संग्रहीत मादक पदार्थ दोबारा सर्कुलेशन में न आवे, इस हेतु माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्यायदृष्टांत यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मोहनलाल व एक अन्य, 2012 क्रि.लॉ ज. 3644 में प्रत्येक उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल को नोडल अधिकारी बनाते हुए मादक पदार्थ के अभिग्रहण, स्टोरेज, व्ययन/विनष्टीकरण एवं न्यायिक निगरानी (Judicial Supervision) आदि बिन्दुओं पर सभी राज्यों के सुसंगत विभागीय प्रमुखों से मादक पदार्थ के अभिग्रहण, स्टोरेज व विनष्टीकरण तथा उन पर न्यायिक पर्यवेक्षण के ढंग (judicial supervision) के संबंध में विभिन्न क्वेरीज कर तत्संबंध में जानकारीयां प्राप्त की गईं।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायदृष्टांत थाना सिंह बनाम सेंटल ब्यूरो ऑव नार्कोटिक्स, 2013 क्रि.लॉ ज. 1262 में एन.डी.पी.एस. एक्ट के प्रकरणों को प्राथमिकता देने, मादक पदार्थ का पुनः परीक्षण (अपवादिक दशाओं को छोड़कर) अनुज्ञेय न होने, उचित संख्या में प्रयोगशालायें स्थापित होने आदि के संबंध में केन्द्र और राज्य सरकारों के विभिन्न प्रमुखों को दिशानिर्देश जारी किये हैं।

विचारण पश्चात् सम्पत्ति का व्ययन

अधिनियम की धारा 52-ए के प्रावधान प्रि-ट्रायल डिस्पोजल से संबंधित हैं, न कि विचारण उपरांत डिस्पोजल से संबंधित। अतः उन प्रावधानों का आश्रय विचारण पश्चात् सम्पत्ति के व्ययन हेतु नहीं लिया जाना चाहिये। न्यायदृष्टांत शकील बनाम म.प्र. राज्य 2009 (1) ई.एफ.आर. 330 = 2009 (1) एम.पी.एच.टी. 313 के मामले में निर्णय में अधिनियम की धारा 52-ए के तहत सम्पत्ति का व्ययन किये जाने के दिये गये निर्देश को माननीय उच्च न्यायालय द्वारा उचित नहीं माना गया।

धारा 63 अधिहरण करने की प्रक्रिया का प्रावधान करती है, जिस अनुसार –

“(1) इस अधिनियम के अधीन अपराधों के विचारण में, चाहे अभियुक्त को सिद्धदोष या दोषमुक्त या उन्मोचित किया जाता है, न्यायालय यह विनिश्चय करेगा कि क्या इस अधिनियम के अधीन अभिगृहीत कोई वस्तु या चीज धारा 60 या धारा 61 या 62 के अधीन अधिहरण के लिए दायी है और यदि वह यह विनिश्चय करता है कि वस्तु इस प्रकार अधिहरण के लिए दायी है तो वह तदनुसार अधिहरण का आदेश कर सकेगा।

(2) जहां इस अधिनियम के अधीन अभिगृहीत कोई वस्तु या चीज धारा 60 या धारा 61 या धारा 62 के अधीन अधिहरण के लिए दायी प्रतीत होती है किंतु वह व्यक्ति जिसने उसके संबंध में अपराध किया है, ज्ञात नहीं है या पाया नहीं जा सकता है वहां न्यायालय ऐसे दायित्व के बारे में जांच कर सकेगा तथा तदनुसार अधिहरण का आदेश कर सकेगा:

परंतु किसी वस्तु या चीज के अधिहरण का कोई आदेश, अभिग्रहण की तारीख से एक मास की समाप्ति तक या ऐसे किसी व्यक्ति की, जो उसके प्रति किसी अधिकार का दावा करे, सुनवाई के और ऐसे साक्ष्य के, यदि कोई हो, बिना जो वह अपने दावे की बाबत पेश करता है, नहीं किया जाएगा:

परंतु यह और कि यदि किसी स्वापक औषधि, मनः प्रभावी पदार्थ, (नियंत्रित पदार्थ) अफीम पोस्त, कोका के पौधे या कैनेबिस के पौधे से भिन्न कोई वस्तु या चीज शीघ्रतया और प्रकृत्या क्षयशील है या यदि न्यायालय की यह राय है कि उसका विक्रय उसके स्वामी के फायदे के लिए होगा तो वह उसके विक्रय के लिए किसी समय निदेश दे सकेगा और इस उपधारा के उपबंध विक्रय के शुद्ध आगमों को यथाशक्य साध्य रूप में लागू होंगे”।

इस तरह अधिहरण का आदेश दिये जाने के पूर्व न्यायालय को यह विनिश्चित करना होगा कि क्या वैसी वस्तु या चीज अधिहरण के लिए दायी है। वाहन या जीव जन्तु के संबंध में अधिहरण का आदेश दिये जाने के पूर्व तत्संबंधी कार्यवाहियों के विषय में उसके स्वामी को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिये। इस हेतु उसके स्वामी को सूचना पत्र दिया जाना चाहिए।

न्यायदृष्टांत श्रीमती राजकौर बनाम म.प्र. राज्य 2005 (4) एम.पी.एच. टी. 400 में वाहन के अधिहरण करने की प्रक्रिया करने की स्थिति स्पष्ट कर वाहन के रजिस्टर्ड स्वामी को सूचित किया जाना आवश्यक माना गया व सुनवाई का अवसर दिया बिना अधिहरण की कार्यवाही अमान्य की गई। *न्यायदृष्टांत कैलाश बनाम स्टेट ऑफ राजस्थान, 2006 क्रि.लॉ.ज. 1726* राजस्थान में भी प्रश्नगत कार के समपहरण के आदेश की विधिमान्यता पर विचार किया गया। इस मामले में समपहरण का आदेश करने के पूर्व वाहन के स्वामी को सूचना नहीं दी गई थी और न ही उसे सुनवाई का कोई अवसर दिया गया था, तो माना गया कि अधिनियम की धारा 60 व 63 की प्रावधानित प्रक्रिया का

पालन किए बिना कार के समपहरण का आदेश दिया गया था व ऐसे आदेश को विधिक नहीं मानते हुये कार समपहरण के आदेश को अपास्त कर दिया गया।

Abhijit Singh v. State ILR (2011) MP 780 & Proviso of S. 63(2) is attracted only when a person, who committed the offence in connection with the seized vehicle, is not known or cannot be found. Where the person who committed the offence under the Act is known and has faced the trial and himself is the owner of the vehicle, the proviso would not be applicable.

मध्यप्रदेश स्वापक औषधि एवं मनः प्रभावी पदार्थ नियम, 1985 का नियम 13 विचारण उपरांत सम्पत्ति के व्ययन के संबंध में सुसंगत है। उक्त नियम 13 के अनुसार –

- (1) अधिनियम के अधीन अधिहरण की गई समस्त वस्तुएं तथा चीजें उस जिले के, जिसमें कि अधिहरण का आदेश पारित किया गया है, जिला आबकारी अधिकारी को परिदत्त की जायेंगी।
- (2) यदि अधिहरण की गयी चीज अफीम हो तो उसका ऐसी रीति से व्ययन किया जायेगा जैसी कि आबकारी आयुक्त या उसके द्वारा इस संबंध में सम्यक रूप से प्राधिकृत अन्य अधिकारी समय-समय पर निर्देश दें।
- (3) अधिहरण की गई समस्त अन्य वस्तुएं तथा चीजें नष्ट कर दी जायेंगी या सार्वजनिक नीलाम द्वारा बेच दी जायेंगी और विक्रय आगमों को सरकार के पास जमा किया जायेगा।

उक्त नियमों के पश्चात् स्टैंडिंग ऑर्डर जारी किया गया, जिसके खंड 6.1 में प्रावधान है कि *other goods (including conveyance), ripe for disposal may be disposed of by public auction or in such manners as is deemed convenient in the best interest of the Government*”.

अतः विधि की यह स्थिति स्पष्ट है कि विचारण होने के पश्चात् न्यायालय द्वारा यह विनिश्चित किया जायेगा कि अभिगृहीत सम्पत्ति अधिहरण की जाये अथवा नहीं। तदोपरांत मादक पदार्थ व अन्य सामग्री उचित व्ययन हेतु जिला आबकारी अधिकारी को प्रेषित किया जायेगा। अन्य मूल्यवान सामग्री लोक नीलामी द्वारा बिक्री कर राशि शासन के पक्ष में राजसात किये जाने का और मूल्यहीन सम्पत्ति यथा बोरे, बैग, कपड़े आदि नष्ट किये जाने का आदेश विचारण पश्चात् दिया जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर नियम एवं आदेश (आपराधिक) के नियम 575 (15) के तहत विविध दांडिक प्रकरण कायम कर सम्पत्ति यथा वाहन आदि के व्ययन की कार्यवाहियां की जा सकती हैं।

•

मृतक के अविवाहित होने पर गुणांक का चयन

प्रदीप कुमार व्यास,

प्रभारी संचालक,

मध्यप्रदेश राज्य न्यायिक अकादमी,

जबलपुर

मोटर यान अधिनियम, 1988 के अधीन मृत्यु प्रकरण में प्रतिकर निर्धारण के समय मृतक के अविवाहित होने पर गुणांक मृतक के उम्र के अनुसार चयन किया जायेगा या माता पिता के उम्र के आधार पर चयन किया जायेगा यह प्रश्न प्रायः सदस्य मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष उत्पन्न होता है और विभिन्न न्यायदृष्टांत प्रस्तुत किये जाते हैं तब अधिकरणों का अमूल्य समय नष्ट होता है यहाँ हम इसी प्रश्न को विचार करेंगे।

इस प्रश्न पर *न्यायदृष्टांत म्युनिसिपल कारपोरेशन ऑफ ग्रेटर बाम्बे विरुद्ध श्री लक्ष्मण अय्यर, एआईआर 2003 एससी 4182* निर्णय चरण 12 में यह प्रतिपादित किया गया है कि मृतक के अविवाहित होने पर और माता-पिता के नियोजन में और शिक्षित होने पर उनका योगदान विचारणीय होता है। एक व्यक्ति के विवाह होने के बाद उसका योगदान कम होने की संभाव्यता एक वास्तविकता है। प्रतिकर का योगदान की हानि या आर्थिक लाभ की हानि से संबंध होता है दावेदारों की उम्र को विचार में लेते हुए इस मामले में दस का गुणांक प्रयोग किया गया।

न्यायदृष्टांत रमेश सिंह विरुद्ध सतवीर सिंह, एआईआर 2008 एससी 1233 निर्णय चरण 5 में भी यह प्रतिपादित किया गया है कि सभी मामलों में मृतक की उम्र के आधार पर गुणांक का चयन नहीं किया जा सकता जब एक युवा व्यक्ति की दुर्घटना में मृत्यु होती है जिसके पीछे वृद्ध माता पिता जीवित बचते हैं वहाँ उनकी अल्प जीवन प्रत्याशा को देखते हुए गुणांक का चयन किया जाता है। यह मामला धारा 163-ए मोटरयान अधिनियम पर आधारित था।

न्यायदृष्टांत कानसिंह विरुद्ध तुका राम, 2015 एसजे 594 (एससी) में मृतक अविवाहित था और उसके माता-पिता के उम्र के आधार पर 11 का गुणांक का चयन करना उचित माना गया था।

न्यायदृष्टांत न्यू इंडिया एशोरेन्स कंपनी लिमिटेड विरुद्ध श्रीमती शांती पाठक, एआईआर 2007 एससी 2649 तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ निर्णय चरण 7 के अनुसार मृतक के माँ की उम्र 65 वर्ष को देखते हुए 5 का गुणांक उचित माना गया। इस मामले में बीमा कंपनी ने अपील इस आधार पर की थी कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने दावेदारों की उम्र को विचार में न लेकर और मृतक की उम्र को विचार में लेकर गुणांक प्रयुक्त करने में भूल की है अपील को स्वीकार किया गया था।

उक्त चारों मामलों में यह प्रश्न विचारणीय था कि गुणांक का मृतक की उम्र या माता-पिता की उम्र, किनकी उम्र के आधार पर चयन किया जाना चाहिए और सभी मामलों में माता-पिता अर्थात दावेदार की उम्र के आधार पर गुणांक के चयन करने की विधि प्रतिपादित की गई है।

इसके अतिरिक्त माता पिता की उम्र के आधार पर गुणांक का चयन उनकी अवशेष जीवन प्रत्याशा का देखते हुए भी किया जाना उचित होता है अधिकरणों का कार्य एक युक्तियुक्त प्रतिकर निर्धारित करना होता है जो न तो अत्यंत अल्प होना चाहिये और न ही हवा में गिरे हुए फल के समान लाभकारी होना चाहिये। इस संबंध में *न्यायदृष्टांत स्टेट आफ हरियाणा वि. जसवीर कौर ए.आई.आर 2003 एस.सी 3696 सैयद वसीर अहमद वि. मोहम्मद जमील ए.आई.आर. 2009 एससी 1219* अवलोकनीय है।

न्यायदृष्टांत सरला वर्मा विरुद्ध देहली ट्रांसपोर्ट, 2009 एससीजे 1298 (एससी) के मामले में मृतक के उम्र के आधार पर गुणांक का चयन करने की विधि प्रतिपादित की गई है और उस आधार पर एक तालिका भी बनाई गई है लेकिन इस मामले में यह प्रश्न विचारणीय नहीं था कि यदि मृतक अविवाहित हो तब गुणांक का चयन किसकी उम्र के आधार पर होना चाहिए। यद्यपि निर्णय चरण संख्या 15 में यह विचार अवश्य किया गया है कि यदि मृतक अविवाहित हो तो उसका व्यक्तिगण जीवन निर्वाह खर्च उसकी आमदनी का 50 प्रतिशत काटा जाना चाहिए।

न्यायदृष्टांत रेश्मा कुमारी विरुद्ध मदन मोहन, 2013 एससीजे 1253 (एससी) तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ के मामले में उक्त न्याय दृष्टांत सरला वर्मा की पुष्टि की गई है लेकिन इस मामले में भी यह प्रश्न विचारणीय नहीं था कि मृतक अविवाहित हो तब गुणांक का चयन किसकी उम्र आधार पर किया जाना चाहिए।

न्यायदृष्टांत मुन्ना लाल जैन विरुद्ध विपिन कुमार शर्मा, (2015) 6 एससीसी 347 तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ ने उक्त न्यायदृष्टांत रेश्मा कुमारी और सरला वर्मा पर भरोसा करते हुए मृतक के अविवाहित होने पर भी उसकी उम्र के आधार पर गुणांक का चयन करने संबंधी विधि प्रतिपादित की है।

न्यायदृष्टांत उक्त सरला वर्मा, रेश्मा कुमारी और मुन्नालाल जैन में उक्त *न्यायदृष्टांत श्री लक्ष्मण अय्यर, रमेश सिंह और श्रीमती शांति पाठक* को विचार में नहीं लिया गया है।

पूर्व निर्णय की विधि या Law of Precedent के अनुसार उक्त *श्रीमती शांति पाठक* तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ वाला मामला वर्ष 2007 का अर्थात् उक्त रेश्मा कुमारी और मुन्नालाल जैन के निर्णय क्रमशः 2013 और 2015 से पहले का होने से वह बंधनकारी प्रभाव रखेगा।

अतः उक्त *न्यायदृष्टांत लक्ष्मण अय्यर, रमेश सिंह और श्रीमती शांति पाठक* में यह प्रश्न विचारणीय होने के कारण की मृतक के अविवाहित होने पर **गुणांक का चयन मृतक या माता-पिता** किसकी उम्र के आधार पर करना चाहिए और **श्रीमती शांति पाठक** का निर्णय पूर्व निर्णय होने से और उसको बाद के निर्णय सरला वर्मा, रेश्मा कुमारी और मुन्ना लाल जैन में विचार में नहीं लिए जाने के कारण मृत्यु प्रकरण में प्रतिकर निर्धारण के समय यदि मृतक अविवाहित हो और दावेदार माता-पिता हो तब गुणांक का चयन माता-पिता की उम्र के आधार पर किया जाना चाहिए।

•

PART – II

NOTES ON IMPORTANT JUDGMENTS

*222. ARBITRATION AND CONCILIATION ACT, 1996 – Section 34 (2)

- (i) **Setting aside an award – An arbitral award may be set aside only if one of the conditions specified in section 34 (2) of the Act is satisfied – The finding of facts recorded by an arbitrator cannot be interfered on the ground that the terms of the contract were not correctly interpreted by him.**
- (ii) **When the parties have arrived at a concluded contract and acted on the basis of those terms and conditions of the contract then substituting new terms in the contract by the arbitrator or by the court would be erroneous or illegal.**

माध्यस्थ और सुलह अधिनियम, 1996 – धारा 34 (2)

- (i) एक अवार्ड को अपास्त करना – एक माध्यस्थ अवार्ड केवल धारा 34 (2) अधिनियम में दर्शाई शर्तों में से कोई एक शर्त के (प्रमाणित या) संतुष्ट हो जाने पर ही अपास्त किया जा सकता है – तथ्यों के बारे में एक माध्यस्थ द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष में इस आधार पर हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता कि उनके द्वारा संविदा के शर्तों का सही तरीके से अर्थान्वयन नहीं किया गया है।
- (ii) जहाँ पक्षकार एक **concluded contract** या अंतिम संविदा पर पहुंच जाते हैं और उसकी शर्तों एवं दशाओं के आधार पर कार्य करते हैं वहाँ माध्यस्थ द्वारा या न्यायालय द्वारा नई शर्तें संविदा में प्रतिस्थापित करना त्रुटिपूर्ण या अवैध होगा।

Swan Gold Mining Limited v. Hindustan Copper Limited

Judgment dated 22.09.2014 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 9048 of 2014, reported in (2015) 5 SCC 739

*223. ARBITRATION AND CONCILIATION ACT, 1996 – Section 34 (2)

LIMITATION ACT, 1963 – Section 14

Whether provision of section 14 of Limitation Act, 1963 will apply on an application under section 34 of the Act of 1996 ? Held, Yes – Period covered by *bona fide* litigious activity should be exempted. *Consolidated Engineering Enterprises v. Principal Secretary, Irrigation Deptt. and others*, (2008) 7 SCC 169, *Union of India and another v. Bhavna Engineering Company*, (2008) 13 SCC 546 and *State of Goa v. Western Builders*, (2006) 6 SCC 236 referred.

माध्यस्थ और सुलह अधिनियम, 1996 – धारा 34 (2)

परिसीमा अधिनियम, 1963 – धारा 14

क्या धारा 14 परिसीमा अधिनियम, 1963 के प्रावधान धारा 34 अधिनियम, 1996 के आवेदन पर लागू होंगे ? अभिनिर्धारित किया गया, हाँ। कंसोलिटेड इंजिनियरिंग इन्टर प्राइजेस विरुद्ध प्रिंसिपल सेक्रेटरी, इरीगेशन डिपार्टमेंट और अन्य, (2008) 7 एस.सी.सी. 169, यूनियन ऑफ इंडिया एण्ड अनादर विरुद्ध भावना इंजीनियरिंग कंपनी (2008) 13 एस.सी.सी. 546 और स्टेट ऑफ गोवा विरुद्ध वेस्टर्न बिल्डिर्स (2006) 6 एस.सी.सी. 236 रेफर किये गये।

M.P. Veneer and Plywood Ltd. v. State of M.P. and another
Order dated 07.05.2015 passed by the High Court of M.P. in Arbitration Appeal No. 39 of 2010, reported in 2015 (3) MPLJ 299

224. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 3 Rule 2 and Order 18 Rule 4
ACCOMMODATION CONTROL ACT, 1961 (M.P.) – Sections 12 (1) (a) and 12 (1) (f)

- (i) Whether the power-of-attorney holder, who is also son of landlord, can depose in place of landlord for the factum of *bona fide* need? Held, Yes, because the aspect of *bona fide* need is a fact which is known to most of the family members.
- (ii) Fact of non-payment of arrears of rent – May be within the personal knowledge of landlord or it may be within the knowledge of the power the of - attorney holder and depends upon the facts and circumstances of each case but he can depose in place of landlord on this point also.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 3 नियम 2 और आदेश 18 नियम 4

स्थान नियंत्रण अधिनियम, 1961 (म.प्र.) – धाराएं 12(1)(ए) और 12(1)(एफ)

- (i) क्या मुख्तयारनामा धारक, जो कि मकान मालिक का पुत्र भी है, मकान मालिक के स्थान पर, सद्भाविक आवश्यकता के तथ्य के लिये, कथन दे सकता है? अधिनिर्धारित किया गया हाँ, क्योंकि सद्भाविक आवश्यकता का पक्ष ऐसा तथ्य है जो परिवार के अधिकतर सदस्यों के ज्ञान में होता है।
- (ii) बकाया किराया भुगतान न करने का तथ्य मकान मालिक के व्यक्तिगत ज्ञान में हो सकता है या मुख्यतयार नामा धारक के ज्ञान में हो सकता है यह प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है किन्तु मुख्यतयार नामा धारक मकान मालिक के स्थान पर इस बिन्दु पर भी कथन कर सकता है।

Ghanshyam Chandil v. Ramkatori Agrawal

Order dated 28.04.2015 passed by the High Court of M.P. in W.P. No. 7646 of 2014, reported in 2015 (3) MPLJ 181

Extracts from the Order:

In *Smt. Ramkubai since deceased by L.Rs. and others v. Hajarimal Dhokalchand Chandak and others*, AIR 1999 SC 3089, the Apex Court opined as under: –

We have already noted above that the ground of bona fide requirement of the landlady was accepted by the trial Court but it was negated by the Appellate Court and the same was confirmed by the High Court. The Appellate Court was swayed away by the fact that the landlady herself did not come into the witness-box to support her claim. What is not appreciated by the Appellate Court is that her son Bhikchand who was also her G.P.A. holder and for whose benefit the business is to be set up, did come into the witness-box to support the case of personal requirement. The Appellate Court was of the view that the bona fide requirement is in the first place a state of mind and might be something more and that could be established only by the landlady. In all fairness to Mr. Mohta, we must note, that he conceded that reasoning of the Appellate Court could not be supported.”

A Plain reading of this para shows that the Supreme Court made it clear that Appellate Court has failed to appreciate that the son of plaintiff, who was also POA holder, entered the witness-box to support the case of personal requirement. The Apex Court set aside the judgment of the Appellate Court, which was affirmed by the High Court.

The judgment of *Janki Vashdeo Bhojwani and another v. Indusind Bank Ltd. and others, 2005 (1) MPLJ (SC) 421*, was considered by this Court in *Bashir v. Smt. Hussain Bano, 2005 (2) MPLJ 230*. This Court opined that when POA holder is a member of family, he can depose on her behalf regarding the bona fide need. In my view also, the aspect of bona fide need is a thing which is known to most of the family members. Therefore, it cannot be said that deposition of POA holder on the point of bona fide need is beyond his personal knowledge. In other words, the son, who is POA holder in the present case, knows about the factual aspect of bona fide need. It is well within his personal knowledge and, hence, he can depose with regard to bona fide requirement.

In my view, it depends on the facts and circumstances of the case. In a given case, it may happen that this factual aspect is also known to the POA holder being the son. For example, if mother is very old, illiterate or not very well educated or for other social reason not able to take care of everything, she can very well entrust the work of keeping the record of rent to her son. Putting it differently, there may be cases where the mother/father may entrust the work of maintaining the account of rent to their son. Therefore, as a thumb rule, it cannot be said that it can be the only plaintiff who may have personal knowledge about the question of nonpayment of rent. Thus, as per principle 18(c) laid down in *Man Kaur (Dead) by Lrs. v. Hartar Singh Sangha, 2011 (2) MPLJ (SC) 11* I am unable to hold that principal alone may have personal knowledge in cases of non-payment of rent in eviction suit. This depends on the facts and circumstances of each case. If POA holder enters the witness-box, it is open to the defendant to ask relevant questions on the aspect of non-payment of rent, personal knowledge about non-payment of rent etc. POA holder's statement can very well be demolished during cross-examination.

•

***225. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 7 Rule 11**

LIMITATION ACT, 1963 – Articles 64 and 65

Where the issue of limitation is a mixed question of fact and law, it can be decided only after framing of issues and recording of evidence – Plaintiff cannot be rejected under Order 7 Rule 11 CPC – When from the averments of the plaint it is clear that the suit is barred by any law then the plaint can be rejected under Order 7 Rule 11.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 7 नियम 11

परिसीमा अधिनियम, 1963 – अनुच्छेद 64 और 65

जहाँ परिसीमा का बिन्दू तथ्य व विधि का मिश्रित प्रश्न हो जो वादप्रश्न विरचित करने और साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् ही निराकृत किया जा सकता है – वाद आदेश 7 नियम 11 सी.पी.सी. के तहत खारिज नहीं किया जा सकता – जब वाद पत्र के अभिवचनों से यह स्पष्ट हो कि वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है तब वाद आदेश 7 नियम 11 के अधीन निरस्त किया जा सकता है।

Pramod Kumar v. Saiyad Rajiy Sultan & others

Order dated 15.04.2015 passed by the High Court of M.P. in Misc. Appeal No. 1791 of 2014, reported in 2015 (3) MPHT 112

•

***226. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 9 Rule 7 and Section 151**

An application under Order 9 Rule 7 CPC, for setting aside *ex parte* proceeding was rejected by the trial Court – Defendant produced another application under section 151 CPC with a prayer to permit him to participate in further proceeding in the suit and also for taking W.S. and documents on record – Trial Court also rejected the same and even did not permit the defendant to participate in further proceeding – Order partly quashed by Hon'ble the High Court and held that even after rejection of the said application, the defendant's right to participate in further proceeding in the suit does not come to an end – *Ramesh Kumar v. Meethalal, 1986 (1) MPWN 15* relied on.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 9 नियम 7 और धारा 151

एक पक्षीय कार्यवाही को अपास्त करने के लिये आदेश 9 नियम 7 सी.पी.सी. का एक आवेदन विचारण न्यायालय द्वारा निरस्त किया गया – प्रतिवादी ने एक अन्य आवेदन धारा 151 सी.पी.सी. के अधीन इस प्रार्थना के साथ प्रस्तुत किया कि उसे वाद की आगे की कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दी जाये और उसका लिखित कथन और दस्तावेज अभिलेख पर लिये जाये – विचारण न्यायालय ने इस आवेदन को भी निरस्त किया और यहा तक की प्रतिवादी को आगे की कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति भी नहीं दी – माननीय उच्च न्यायालय ने इस आदेश को अंशतः अपास्त किया और यह अभिनिर्धारित किया की ऐसे आवेदन के खारिज होने के बाद भी प्रतिवादी का वाद की

आगे की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार समाप्त नहीं होता – रमेश कुमार विरुद्ध मीठा लाल, 1986 (1) एम.पी.डब्ल्यू.एन. 15 पर विश्वास किया गया।

Laxminarayan v. Munnibai

Order dated 03.12.2014 passed by the High Court of M.P. in W.P. No. 7715 of 2014, reported in 2015 (3) MPLJ 401

•
***227. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 9 Rule 13 and Order 43 Rule 1**

Ex parte award has been passed in a claim case by Additional Member MACT – Application filed under Order 9 Rule 13 CPC has also been rejected by him – High Court allowed Misc. Appeal and held that to do substantial justice between the parties the expression “sufficient cause” should be construed liberally – Condition to deposit 50% award amount and Rs. 5,000/- as cost imposed upon the non-applicant.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 9 नियम 13 और आदेश 43 नियम 1

अतिरिक्त सदस्य मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने एक दावा प्रकरण एकपक्षीय अवार्ड किया – आदेश 9 नियम 13 सी.पी.सी. के अधीन प्रस्तुत आवेदन भी उन्होंने निरस्त कर दिया – उच्च न्यायालय ने विविध अपील स्वीकार की और अभिनिर्धारित किया कि पक्षकारों के बीच तात्त्विक न्याय करने के लिए अभिव्यक्ति “पर्याप्त कारण” का उदारतापूर्वक अर्थ लगाना चाहिए – अवार्ड राशि का 50 प्रतिशत व 5000/- खर्च जमा करवाने की शर्त अनावेदक पर लगाई गई।

Dharmendra Singh and anr. v. Naggaji

Order dated 24.04.2015 passed by the High Court of M.P. in Misc. Appeal No. 2095 of 2013, reported in 2015 (II) MPWN 50

•
228. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 13 Rule 4

Objection regarding admissibility of a document – Proper stage for deciding such objection – It should be decided at the earliest and preferably, before it is marked as an exhibit – Where the evidence is recorded by Commissioner, it will be open for the Commissioner to record the objection raised about admissibility of the document and tentatively mark the document as “exhibit” – Decision on the said objection must be taken by the Court at the earliest. 2009(2) AIR (Bom) 296 (FB) followed.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 13 नियम 4

दस्तावेज की ग्राह्यता संबंधी आपत्ति – ऐसी आपत्ति के निराकरण का उचित प्रक्रम – इसे जल्द से जल्द और अधिमानतः प्रदर्श अंकित करने के पूर्व निराकृत कर देना चाहिए – जहाँ साक्ष्य कमिश्नर द्वारा अभिलिखित की जाती है वहाँ कमिश्नर ऐसी दस्तावेज की ग्राह्यता बाबत आपत्ति अभिलिखित करके दस्तावेज को अंतरिम रूप से प्रदर्श अंकित कर सकता है – ऐसी आपत्ती पर निराकरण न्यायालय द्वारा जल्द से जल्द लिया जानना चाहिए। 2009 (2) AIR (Bom) 296 फूल बेंच पर भरोसा किया गया।

Pawan Kumar Pathak v. Mohan Prasad

Order dated 15.04.2015 passed by the High Court of M.P. in W.P. No. 1760 of 2015, reported in 2015 (3) MPLJ 148

Extracts from the Order:

The Bombay High Court considered various judgments of privy council, Supreme Court and various High Courts and opined that these judgments lean in favour of determining the question as to admissibility of document at the time of its reception or at the earliest possible opportunity. The reason is that if the Court allows the objection, the party tendering the evidence may take such steps as may be advised to get the lacunae remedied. Once inadmissible evidence is admitted on record, it is impossible to say what its effect may be on the mind of the person, who hears it. It creates atmosphere of prejudice of affecting fair trial. It may, unconsciously, be regarded by judicial minds as corroboration of some piece of evidence legally admissible and thereby obtain for latter quite undue weight and significance. In order to prevent inadmissible evidence going on record, the opponent can always raise an objection to the admissibility of document. The larger Bench considered the judgment of *Bipin Shantilal Panchal v. State of Gujarat and another*, (2001) 2 SCC 65 and *State v. Navjot Sandhu*, 2003 (6) SCC 641 and opined as under :-

“81. The aforesaid view is again reiterated by another two Judge Bench of the Supreme Court in the case of *Smt. Dayamathi Bai vs. K. M. Shaffi* (supra) wherein the reliance is placed on the Privy Council judgment in the case of *Gopal Das v. Sri Thakurji* (supra); wherein the Privy Council ruled that the objection as to the mode of proof must be taken and determined as it arises before the document is marked and exhibited.

82. While taking above view, we are also conscious of the another three Judge Bench judgment of the Supreme Court in the case of *Bipin Shantilal Panchal* (supra) followed by another judgment in the case of *State v. Navjot Sandhu* (supra); wherein the view taken is that whenever any objection is taken regarding admissibility of the material or any item of oral last evidence such objection should be

decided at the stage of the final judgment. The said judgments were followed by the learned single Judge of this Court in the case of *Boman P. Irani* (supra).

83. The procedure suggested by three Judge Bench of the Apex Court in the case of *Bipin Shantilal Panchal* (supra) for being followed is little different than the view expressed by the another three Judge Bench judgment of the same Court in the case of *P. C. Purushothama Reddiar v. S. Perumal* (supra) followed by two Division Benches of the Supreme Court in the cases of *R.V.E. Venkatachalam Gounder and Smt. Dayamathi Bai v. K. M. Shaffi* (supra).

84. Now the questions arises as to which of the two views this Court should follow. The view expressed in *Bipin Shantilal Panchal* (supra) by the Apex Court is based on the peculiar factual matrix arising out of criminal trial which was prolonged for almost 10 (Ten) years in breach of fundamental right of the accused under Article 21 of the Constitution of India guarantying speedy and expeditious trial. The same view was followed in the case of *State v. Navjot Sandhu* (supra) involving more or less similar facts surfaced in a criminal trial. The question referred for our consideration arises out of civil proceedings. governed by the provisions of the Civil Procedure Code. It is well settled that if certain things are required to be done, it is well by the Statute in a specific manner, then it cannot be done in any other manner as ruled by the Apex Court in the case of *Nazir Ahmed v. King Emperor*, AIR 1936 PC 243; *State of Uttar Pradesh v. Singhara Singh*, AIR 1964 SC 358 followed by this Court in *Vanmala S. Aney v. National Education Society, Khamgaon*, 1982 B.C.I. 47 : 1982 403. Thus, mandate of Order XIII, Rules 3 and 4 read with Order XVIII, Rule 4(1) and consensus of judicial opinion compel us to fall in line with the view expressed in *R.V.E. Venkatachalam Gounder and Smt. Dayamathi Bai v. K. M. Shaffi* (both cited supra).

85. Apart from the above, the principles of stare decisis squarely applies to the case on hand. In *Mishri Lal v. Dharendra Nath*, 1999 DGLS (soft) 396 : (1999) 4 SCC 11 (paras 14-22), the Supreme Court referred to its earlier decision in *Maktul v. Manbhari*, 1958 DGLS (soft) 86: AIR 1958 SC 918 on the scope of doctrine of stare decisis with reference to Hulsbury's Laws of England and Corpus Juris Secundum and held (at S.C.C. p. 18 para-14) that –

“a decision which has been followed for a long period of time, and has been acted upon by persons in the formation of contracts or in the disposition of their property, or in the general conduct of affairs, or in legal procedure or in other ways, will generally be followed by Courts of higher authority other than the Court establishing the rule, even though the Court before whom the matter arises afterwards might be of a different view.”

86. Assuming that it is possible to take different view or work out different procedure as suggested in *Bipin Shantilal Panchal*; as long as principle laid down in *P.C. Purushothama Reddiar v. S. Perumal*; *R.V.E. Venkatachalam Gounder*; and *Smt. Dayamathi Bai v.: K. M. Shaffi* (all cited supra) has been consistently followed in our country in civil matters, as observed in *Mishri Lal* (supra), it will be worthwhile to let the matter rest since a large number of parties have modulated and continue to modulate their legal relationships based on the settled law.

Bombay High Court answered the aforesaid question as under :-

“As already noticed, (i) objection to the documents ought to be produced relating to the deficiency of stamp duty must be taken when the document is tendered in evidence and such objection must be judicially determined before it is marked as exhibit;

(ii) Objection relating to the proof of document of which admissibility is not in dispute must be taken and judicially determined when it is marked as exhibit;”

The larger Bench opined that in civil matters and in view of provision of Civil Procedure Code, objection needs to be decided at the earliest. Order 13, Rule 4, Civil Procedure Code makes it clear that every document which has been admitted in evidence in the suit must contain an endorsement regarding the number and title of suit, the name of the person producing the documents, the date on which it was produced and a statement of its having been so admitted. Statutory mandate is that this endorsement must be signed or initialled by the Judge. Sub-rule (2) makes it obligatory on the part of the Judge to make an endorsement and sign or initialled it when the document is an entry in a book, account or record. Thus, Civil Procedure Code contains a specific mandatory procedure for the purpose of admitting a document. This procedure is being followed by civil Courts on regular basis. As per this statutory procedure and principle of stare decisis, I respectfully agree with the view taken by Bombay

High Court in *Hemendra Rasiklal Ghia and ors. v. Subodh Mody and ors.*, 2009 (2) AIR (Bom) 296. Since this Court has followed the judgment of larger Bench of Bombay High Court, other judgments cited by the parties are of no assistance.

***229. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 26 Rule 9**

In a suit for declaration and injunction, there is no agreed map on record and question involved in the matter is that in what survey number the road is moving – In that situation, order to appoint Commissioner will not amount to exercise of collecting the evidence but it will facilitate the Court to separate the wheat from chaff – *Smt. Beejanwala Talukdar v. Radha Krishna Rai*, 1975 J LJ 440 (DB) relied on.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 26 नियम 9

घोषणा और निषेधाज्ञा के एक वाद में स्वीकृत मानचित्र अभिलेख पर नहीं था – मामले में अंतरग्रस्त प्रश्न यह था कि सड़क किस सर्वे नंबर से गुजरती है – ऐसी स्थिति में कमिश्नर नियुक्त करने का आदेश साक्ष्य संग्रहित करने के समान नहीं होगा बल्कि इससे न्यायालय को भूसे से दाना पृथक करने में सहायता होगी – *न्यायदृष्टांत श्रीमती बेजन्वाला तालुकदार विरुद्ध राधाकृष्ण राय*, 1975 जे.एल.जे. 440 (डी.बी.) पर भरोसा किया गया।

Ramjivan and others v. Satyanarayan and others

Order dated 20.03.2015 passed by the High Court of M.P. in W.P. No. 6745 of 2014, reported in 2015 RN 322

***230. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 39 Rule 2-A**

Trial Judge (ADJ) held that the respondents were guilty of committing a breach and imposed a fine of ` 5,000/- – Whether fine can be imposed under Order 39 Rule 2-A CPC? Held, No – Court can order for attachment of property on the disobeying party or can order him to be detained in civil prison – Whether both steps can be resorted to or one of them needs to be chosen, depends upon the facts and circumstances of each case – *Samee Khan v. Bindu Khan*, AIR 1998 SC 2765 referred.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 39 नियम 2-A

विचारण न्यायाधीश (ए.डी.जे) ने प्रत्यर्थीगण को भंग कारित करने का दोषी पाया और पाँच हजार रूपया अर्थदण्ड अधिरोपित किया – क्या आदेश 39 नियम 2-ए सी.पी.सी.के अधीन अर्थदण्ड अधिरोपित किया जा सकता है? अभिनिर्धारित किया गया, नहीं, न्यायालय उल्लंघनकारी पक्षकार की सम्पत्ति कुर्क करने का आदेश दे सकती है या उसे व्यवहार कारागृह में निरुद्ध करने का आदेश कर सकती है – दोनों उपाय काम

में ले सकती है या उनमें से किसी एक उपाय का चुनाव कर सकती है, यह प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों व परिस्थितियों पर निर्भर करता है। सामी खान विरुद्ध बिंदु खान, ए.आई.आर. 1998 एस.सी. 2765 रेफर किया गया।

Gendalal and anr. v. Chagganlal and anr.

Order dated 26.03.2015 passed by the High Court of M.P. in Misc. Appeal No. 1089 of 2014, reported in 2015 (3) MPHT 89

•
231. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 47 Rule 1

Review of an order – In order to seek review, it has to be demonstrated that order suffers from mistake or error apparent on the face of the record but in the guise of review, re-hearing is not permissible – The Court while deciding the application of review cannot sit in appeal over the judgment or order passed by it.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 47 नियम 1

एक आदेश का पुनरावलोकन – पुनरावलोकन चाहने के लिए यह प्रमाणित करना होता है कि आदेश में ऐसी गलती या भूल है जो अभिलेख के देखने में ही प्रकट होती है किंतु पुनरावलोकन के बहाने, पुनः सुनवाई अनुमत योग्य नहीं है – न्यायालय जब पुनरावलोकन का आवेदन निराकृत करती है तब उस निर्णय या आदेश जो उसके द्वारा पारित किया गया था, उसकी अपील (की सुनवाई की तरह) नहीं बैठ सकती है।

Satya Pal Anand v. Bal Niketan Nyas, Bhopal and others

Order dated 29.04.2015 passed by the High Court of M.P. in Review Petition No. 230 of 2015, reported in 2015 (3) MPLJ 83 (DB)

Extracts from the Order:

It is well settled in law that in the guise of review, rehearing is not permissible. In order to seek review it has to be demonstrated that order suffers from error apparent on the face of record. The Court while deciding the application for review cannot sit in appeal over the judgment or decree passed by it.

See:

S. Bagirathi Ammal v. Palani Roman Catholic Mission, (2009) 10 SCC 464, State of W.B. and others v. Kamal Sengupta and another, (2008) 8 SCC 612 and Kamlesh Verma v. Mayawati, (2013) 8 SCC 320. Even otherwise, the impugned order neither suffers from any error apparent on the face of record nor any jurisdictional infirmity warranting interference of this Court in review jurisdiction. From perusal of the application, we find no ground for recall of the order dated 6-4-2015 passed in Writ Petition No. 4638/2015, is made out.

232. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 93 and 165

PREVENTION OF CORRUPTION ACT, 1988 – Sections 3 and 4

Issuance of search warrant by the Special Judge appointed under the Prevention of Corruption Act, 1988 – Whether by invoking jurisdiction under section 93 (1) Cr.P.C. search warrant can be issued by the Court competent on the request of Investigating Agency? Held, Yes – There is no rider that prior to taking action as per the provisions under section 165 Cr.P.C., search warrant cannot be issued by the Court competent by invoking jurisdiction under section 93 (1) Cr.P.C – The I.O. may take search as per the provisions under section 165 Cr.P.C. or if required, may approach the Court competent under section 93 (1) Cr.P.C.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 93 एवं 165

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 – धाराएं 3 और 4

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधीन नियुक्त विशेष न्यायाधीश द्वारा तलाशी वारण्ट जारी किया जाना – क्या धारा 93 (1) दं.प्र.सं. के अधीन क्षेत्राधिकार प्रयोग करके सक्षम न्यायालय द्वारा, अनुसंधान एजेन्सी के निवेदन पर, तलाशी वारण्ट जारी किया जा सकता है? अभिनिर्धारित किया गया, हाँ – ऐसी कोई बाधा नहीं है कि सक्षम न्यायालय द्वारा धारा 93(1) दं.प्र.सं के अधीन अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करके तलाशी वारण्ट जारी नहीं कर सकती जब तक कि पहले धारा 165 दं.प्र.सं. के अधीन कार्यवाही नहीं की गई हो – अनुसंधान अधिकारी धारा 165 दं.प्र.सं. के अधीन तलाशी ले सकता है या यदि आवश्यकता हो तो धारा 93 दं.प्र.सं. के तहत सक्षम न्यायालय से सहायता ले सकता है।

Avadesh Singh Tomar and others v. State of M.P. and others

Order dated 24.04.2015 passed by the High Court of M.P. in W.P. No. 2352 of 2015 (PIL), reported in 2015 (2) J LJ 274 (DB)

Extracts from the Order :

In the case of *V. S. Kuttan Pillai v. Ramakrishnan & another*, AIR 1980 SC 185, while dealing with the same situation arising from the case observed as under:-

“Section 93(1)(c) of the new Code comprehends a situation where the Court may issue a search warrant when it considers that the purpose of an inquiry, trial or other proceeding under the Code will be served by a general search or inspection to search, seize and produce the documents mentioned in the list. When such a general search warrant is issued, in execution of it the premises even in possession of the accused can be searched and documents found therein can be seized irrespective of the fact that the documents may contain some statement made

by the accused upon his personal knowledge and which when proved may have the tendency to incriminate the accused. However, such a search and seizure pursuant to a search warrant issued under section 93 (1)(c) will not have even the remotest tendency to compel the accused to incriminate himself. He is expected to do nothing. He is not required to participate in the search. He may remain a passive spectator. He may even remain absent. Search can be conducted under the authority of such warrant in the presence of the accused. Merely because he is occupying the premises which is to be searched under the authority of the search warrant it cannot even remotely be said that by such search and consequent seizure of documents including the documents which may contain statements attributable to the personal knowledge of the accused and which may have tendency to incriminate him, would violate the constitutional guarantee against self-incrimination because he is not compelled to do anything. A passive submission to search cannot be styled as a compulsion on the accused to submit to search and if anything is recovered during search which may provide incriminating evidence against the accused it cannot be styled as compelled testimony. This is too obvious to need any precedent in support. The immunity against self-crimination extends to any incriminating evidence which the accused may be compelled to give. It does not extend to cover such situation as where evidence which may have tendency to incriminate the accused is being collected without in any manner compelling him or asking him to be a party to the collection of the evidence. Search of the premises occupied by the accused without the accused being compelled to be a party to such search would not be violative of the constitutional guarantee enshrined in Article 20(3).

It was, however, urged that Section 93(1)(c) must be read in the context of Section 93(1)(b) and it would mean that where documents are known to be at a certain place and in possession of a certain person any general search warrant as contemplated by section 93(1) (c) will have to be ruled out because in such a situation Section 93(1)(a) alone would be attracted. Section 93(1)(b) comprehends a situation where the Court issues a search warrant in respect of a document or a thing to be recovered from a certain place but it is not known to the Court whether that document or thing is in possession of any particular person. Under clause

(b) there is a definite allegation to recover certain document or thing from a certain specific place but the Court is unaware of the fact whether that document or thing or the place is in possession of a particular person. Section 93(1)(c) comprehends a situation where a search warrant can be issued as the Court is unaware of not only the person but even the place where the documents may be found and that a general search is necessary. One cannot, therefore, cut down the power of the Court under Section 93(1) (c) by importing into it some of the requirements of Section 93(1)(b). No canon of construction would permit such an erosion of power of the Court to issue a general search warrant. It also comprehends not merely a general search but even an inspection meaning thereby inspection of a place and a general search thereof and seizure of documents or things which the Court considers necessary or desirable for the purpose of an investigation, inquiry, trial or other proceeding under the Code. The High Court accordingly sustained the general search warrant in this case under section. 93(1)(c).”

So as per the proposition of law laid down by Hon. Supreme Court in the case of *V.S.Kuttan Pillai* (supra) it becomes crystal clear that general search warrant may be issued by the court competent by invoking powers under section 93 (1)(c) of Cr.P.C. There is no rider or exception that prior to take action as per provisions given under section 165 of Cr.P.C., search warrant cannot be issued by the competent court by invoking powers under section 93 (1) (c) of Cr.P.C. Therefore, the Investigating Agency may take search as per provisions under section 165 of Cr.P.C. or if required, may approach the competent court under section 93 (1) (c) of Cr.P.C., as the case may be. Not only this, the decision in the case of *V. S. Kuttan Pillai* (supra), also signifies that the provisions of section 93 (1) (c) is not hit by Article 20 (a) of the Constitution of India, relevant paras of which are quoted above.

•

233. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 156 (3), 157, 173 and 202

- (i) Power to direct investigation under section 156 (3) of the Code, exercise of – Such direction can be issued only after application of mind – When the Magistrate does not take cognizance and does not find it necessary to postpone the issuance of process and finds that a case is made out to proceed forthwith, then directions under section 156 (3) can be issued.**
- (ii) Maxim "*Expressio unius est exclusio alterius*," non applicability of – Is not available for interpretation of section 202 (3) of the Code – In the course of investigation under section 202 of the Code**

with a view to give its report to the Magistrate to enable him to decide whether a case to proceed further, existed, the power of arrest is not available with the police.

- (iii) Power u/s 202 of the Code, nature and scope of – Report sought under the provision has limited purpose of deciding ‘whether or not there is sufficient ground for proceeding’ – The procedure under section 157 or 173 is not intended to be followed.
- (iv) Section 157 of the Code, requirement of – Law explained – Section 157 of the Code requires sending of report by the police that the police officers suspected commission of an offence from information received by the police and thereafter, the police is required to proceed to the spot, investigate the facts and take measures for discovery and arrest – Thereafter, the police has to record statements and report on which the Magistrate may proceed under section 190 of the Code – This procedure is applicable when the police receives information of a cognizable offence, registers a case and forms requisite opinion and not in every case registered by the police.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 156 (3), 157, 173 और 202

- (i) धारा 156(3) संहिता के अधीन अनुसंधान के निर्देश देने की शक्ति का प्रयोग किया जाना – ऐसे निर्देश केवल मस्तिष्क का प्रयोग करने के बाद ही जारी किये जा सकते हैं – जब मजिस्ट्रेट प्रसंज्ञान नहीं लेते हैं और यह आवश्यक नहीं पाते हैं कि आदेशिका का जारी किया जाना स्थगित किया जावे तब वे धारा 156(3) के अधीन निर्देश जारी कर सकते हैं।
- (ii) सूत्र “एक्सप्रेसन यूनियस इस्ट एक्सक्लूजन आल्टरियस” का लागू न होना – यह धारा 202(3) संहिता के अर्थान्वयन में उपलब्ध नहीं होती है – धारा 202 के अधीन अनुसंधान जो कि इस दृष्टि से होता है कि मजिस्ट्रेट को एक प्रतिवेदन दिया जावे कि वे निश्चित कर सकें कि एक मामला आगे अग्रसर होने के लिए अस्तित्व में है, गिरफ्तारी की शक्तियाँ ऐसे अनुसंधान में पुलिस को नहीं होती हैं।
- (iii) धारा 202 संहिता की शक्तियों की प्रकृति और क्षेत्र स्पष्ट किया गया।
- (iv) धारा 157 संहिता की आवश्यकताएँ – विधि समझाई गयी।

Ramdev Food Products Pvt. Ltd. v. State of Gujarat

Judgment dated 16.03.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 600 of 2007, reported in AIR 2015 SC 1742 (3 Judge Bench)

Extracts from the Judgment:

Power under Section 202 is of different nature. Report sought under the said provision has limited purpose of deciding “whether or not there is sufficient ground for proceeding”. If this be the object, the procedure under Section 157 or Section 173 is not intended to be followed. Section 157 requires sending of report by the police that the police officer suspected commission of offence from information received by the police and thereafter the police is required to proceed to the spot, investigate the facts and take measures for discovery and arrest. Thereafter, the police has to record statements and report on which the Magistrate may proceed under Section 190. This procedure is applicable when the police receives information of a cognizable offence, registers a case and forms the requisite opinion and not every case registered by the police.

Thus, we answer the first question by holding that the direction under Section 156(3) is to be issued, only after application of mind by the Magistrate. When the Magistrate does not take cognizance and does not find it necessary to postpone instance of process and finds a case made out to proceed forthwith, direction under the said provision is issued. In other words, where on account of credibility of information available, or weighing the interest of justice it is considered appropriate to straightaway direct investigation, such a direction is issued. Cases where Magistrate takes cognizance and postpones issuance of process are cases where the Magistrate has yet to determine “existence of sufficient ground to proceed”. Category of cases falling under Para 120.6 in *Lalita Kumari v. Govt. of U.P.*, AIR 2014 SC 187 may fall under Section 202. Subject to these broad guidelines available from the scheme of the Code, exercise of discretion by the Magistrate is guided by interest of justice from case to case.

We now proceed to deal with the second question of power of police to arrest in the course of investigation under Section 202 with a view to give its report to the Magistrate to enable him to decide whether a case to proceed further existed. Careful examination of scheme of the Code reveals that in such situation power of arrest is not available with the police. Contention based on language of Section 202(3) cannot be accepted.

The maxim *expressio unius est exclusio alterius* (express mention of one thing excludes others) has been called a valuable servant but a dangerous master. In *Mary Angel and others v. State of T.N.*, (1999) 5 SCC 209 this Court observed as follows on the scope of the maxim:

“Further, for the rule of interpretation on the basis of the maxim *expressio unius est exclusio alterius*, it has been considered in the decision rendered by the Queen’s Bench in the case of *Dean v. Wiesengrund*, (1955) 2 All ER 432. The Court considered the said maxim and held that after all it is no more than an aid to construction and has little, if any, weight where it is possible to account for the *inclusio unius*

on grounds other than intention to effect the *exclusio alterius*. Thereafter, the Court referred to the following passage from the case of *Colquhoun v. Brooks*, [(1887) 19 QBD 400 : 57 LT 448] QBD at 406 wherein the Court called for its approval—
“... ‘The maxim *expressio unius est exclusio alterius* has been pressed upon us. I agree with what is said in the court below by Wills, J. about this maxim. It is often a valuable servant, but a dangerous master to follow in the construction of statutes or documents. The exclusion is often the result of inadvertence or accident, and the maxim ought not to be applied, when its application, having regard to the subject-matter to which it is to be applied, leads to inconsistency or injustice.’ In my opinion, the application of the maxim here would lead to inconsistency and injustice, and would make Section 14(1) of the Act of 1920 uncertain and capricious in its operation.”

The aforesaid maxim was referred to by this Court in the case of *CCE v. National Tobacco Co. of India Ltd.*, (1972) 2 SCC 560. The Court in that case considered the question whether there was or was not an implied power to hold an enquiry in the circumstances of the case in view of the provisions of Section 4 of the Central Excise Act read with Rule 10-A of the Central Excise Rules and referred to the aforesaid passage “the maxim is often a valuable servant, but a dangerous master ...” and held that the rule is subservient to the basic principle that courts must endeavour to ascertain the legislative intent and purpose, and then adopt a rule of construction which effectuates rather than one that may defeat these. Moreover, the rule of prohibition by necessary implication could be applied only where a specified procedure is laid down for the performance of a duty. In the case of *Parbhani Transport Coop. Society Ltd. v. Regional Transport Authority*, AIR 1960 SC 801 this Court observed that the maxim *expressio unius est exclusio alterius* is a maxim for ascertaining the intention of the legislature and where the statutory language is plain and the meaning clear, there is no scope for applying. Further, in *Harish Chandra Bajpai v. Triloki Singh*, AIR 1957 SC 444 the Court referred to the following passage from Maxwell on Interpretation of Statutes, 10th Edn., pp. 316-317:

“Provisions sometimes found in statutes, enacting imperfectly or for particular cases only that which was already and more widely the law, have occasionally furnished ground for the contention that an intention to alter the general law was to be inferred from the partial or limited enactment, resting on the maxim *expressio unius, exclusio alterius*. But that maxim is inapplicable in such cases. The only inference which a court can draw from such

superfluous provisions (which generally find a place in Acts to meet unfounded objections and idle doubts), is that the legislature was either ignorant or unmindful of the real state of the law, or that it acted under the influence of excessive caution.”

We are of the view that the maxim does not apply for interpretation of Section 202 (3) for the reasons that follow. In our view, the correct interpretation of the provision is that merely negating the power of arrest to a person other than police officer does not mean that police could exercise such power. The emphasis in the provision is to empower such person to exercise other powers of incharge of a police station than the power of arrest. As regards the power of police to arrest, there are express provisions dealing with the same and power of police to arrest is not derived from or controlled by Section 202 (3). The said power is available under Section 41 or under a warrant. The power remains available subject to conditions for exercise thereof. For example it can be exercised if cognizable offence is committed in the presence of a police officer (Section 41(1) (a). Under Section 202, since the Magistrate is in seisin of the matter and has yet to decide “whether or not there is sufficient ground for proceeding”, there is no occasion for formation of opinion by the police about credibility of available information necessary to exercise power of arrest as the only authority of the police is to give report to Magistrate to enable him to decide whether there is sufficient ground to proceed. Power of arrest is not to be exercised mechanically. In *M.C. Abraham v. State of Maharashtra, (2003) 2 SCC 649* it was observed :

“.....In the first place, arrest of an accused is a part of the investigation and is within the discretion of the investigating officer. Section 41 of the Code of Criminal Procedure provides for arrest by a police officer without an order from a Magistrate and without a warrant. The section gives discretion to the police officer who may, without an order from a Magistrate and even without a warrant, arrest any person in the situations enumerated in that section. It is open to him, in the course of investigation, to arrest any person who has been concerned with any cognizable offence or against whom reasonable complaint has been made or credible information has been received, or a reasonable suspicion exists of his having been so concerned. Obviously, he is not expected to act in a mechanical manner and in all cases to arrest the accused as soon as the report is lodged. In appropriate cases, after some investigation, the investigating officer may make up his mind as to whether it is necessary to arrest the accused person. At that stage the court has no role to play. Since the power is discretionary, a police officer is not always

bound to arrest an accused even if the allegation against him is of having committed a cognizable offence. Since an arrest is in the nature of an encroachment on the liberty of the subject and does affect the reputation and status of the citizen, the power has to be cautiously exercised. It depends inter alia upon the nature of the offence alleged and the type of persons who are accused of having committed the cognizable offence. Obviously, the power has to be exercised with caution and circumspection.”

Nature of cases dealt with under Section 202 are cases where material available is not clear to proceed further. The Magistrate is in seisin of the matter having taken the cognizance. He has to decide whether there is ground to proceed further. If at such premature stage power of arrest is exercised by police, it will be contradiction in terms. As regards denial of opportunity to record confession under Section 27 of the Evidence Act, it has to be kept in mind that admissibility of such confession cannot guide exercise of power of arrest. Source of power of arrest is governed by other provisions and not by Section 27. It is only if arrest is otherwise permissible that provision of Section 27 may be invoked. If exercise of power of arrest is not otherwise warranted, admissibility of confession under Section 27 cannot facilitate such exercise. We, thus, hold that the police of its own cannot exercise its power of arrest in the course of making its report in pursuance of direction under Section 202.

We may now proceed to deal with the conflict in decisions which has been pointed out to us. *Bombay, Gujarat and Delhi High Courts in Sankalchand Valjibhai Patel v. J.P. Chavda and ors.*, (1979) 1 GLR 17, *Emperor v. Nurmahomed Rajmahomed*, (1929) 31 BOMLR 84, *Mahendrasinh Shanabhai Chauhan and Ors. v. State of Gujarat and Anr.*, (2009) 2 GLR 1647 and *Harsh Khurana v. Union of India*, 121 (2005) DLT 301 (DB) have held that in the course of investigation directed under Section 202 (1) the police cannot exercise the power of arrest. Reasoning is by and large similar. Cases covered by Section 202 are such where Magistrate is yet to decide whether the material was sufficient to proceed. Till formation of such opinion, arrest will be incongruous. We may only refer to the observations of M.P. Thakker, J. (as he then was) *in Sankalchand Valjibhai Patel* (supra) :

“The question that has surfaced in the back drop of the aforesaid facts and circumstances is: when upon receipt of a complaint of an offence a Magistrate instead of issuing process postpones the issue of process against the accused and direct? a police officer to make an investigation for the purpose of deciding whether or not there is sufficient ground for proceeding, can the police officer in charge of the investigation on his own, place the accused under arrest? Section 202 (1) in so far as material reads as under:

Any Magistrate, on receipt of a complaint of an offence of which he is authorised to take cognizance or which has been made over to him under Section 192, may, if he thinks fit, postpone the issue of process against the accused, and either inquire into the case himself or direct an investigation to be made by a police officer or by such other person as he thinks fit, for the purpose of deciding whether or not there is sufficient ground for proceeding.”

On the other hand in *Emperor v. Bikha Moti*, AIR 1938 Sind 113 and *Asha Das and others v. The State*, AIR 1953 Assam 1, Sind and Assam High Courts respectively have taken a contrary view by holding that when direction for investigation issued under Section 202 (1) is issued, the police is to investigate precisely in the same manner and arrest the accused in precisely the same manner as they would have done if they had recorded First Information Report.

We may only refer to the observations of Devis, CJ in *Bikha Moti* (supra) as follows:

“Now Section 202(1) refers not only to an enquiry but also to an investigation : and Section 202(2) confers upon a person other than a Magistrate or a police officer all powers conferred upon a police officer in charge of a police station except the power of arrest without warrant. Surely this implies that a police officer to whom a complaint has been referred for investigation has the power to arrest without warrant under section 54, Criminal P.C. and all other powers which may be exercised by a police officer in the course of an investigation. To us, the scheme of the section appears to be that when a complaint is sent to the police for investigation and report, they are to investigate in precisely the same manner and to arrest in precisely the same way as they would have done if their powers had been first invoked by a first report under section 154, their being only this difference, that in the one case the police embody the result of their investigation to the Magistrate in a report which the Magistrate proceeds to consider under section 203, while in the other case the police embody the result of their investigation in what is called a challan or charge-sheet, but which is really a police report under section 190(b), the term challan or charge sheet not occurring in the section, the accused person, in any case, if arrested by the police, being produced before the Magistrate in the ordinary way. To hold otherwise would be to leave the proceedings started by the Magistrate under section 202, Criminal P.C. unfinished, and in the air; for, he would not

have, as the law contemplates, a report of the investigation but he would have a refusal by the police to report as in this case, and other and independent proceedings in the same matter initiated by them. But the law contemplates that proceedings, begun by the acceptance by a Magistrate of a complaint under section 200, Criminal P.C. and sent to the police for investigation under Section 202, should be terminated by the Magistrate as set out in Section 203 and the following sections. The proceedings are not terminated when the Magistrate's authority is defied, his jurisdiction in effect denied and the order to investigate and report disobeyed. The law does not contemplate this, and we cannot see that this aspect of the case has been considered in any of the judgments which have been cited to us in support of the case of this Court in 27 SLR 67."

For the reasons already discussed above, we approve the view taken in *Sankalchand Valjibhai Patel* (supra), *Nurmahomed Rajmahomed* (supra), *Mahendrasinh Shanabhai Chauhan* (supra) and *Harsh Khurana* (supra) and overrule the rule taken in *Bikha Moti* (supra) and *Asha Das* (supra).

***234. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 167 (2)**

What is the starting point of first fifteen days for the purpose of police custody?

Facts of the case:

An application u/s 439 Cr.P.C. was presented by the accused in the Hon'ble High Court – Till then he was not in judicial custody – He surrendered on 18.06.2015 before the High Court and sent to judicial custody at Jabalpur till the decision of his bail application – His bail application was rejected on 29.06.2015 by Hon'ble the High Court – In that order Court issued consequential direction to the investigating agency to take custody of the accused in accordance with law – Investigating Officer took custody of the accused on 30.06.2015 and produced him before designated court at Bhopal – Designated court granted police custody only till 03.07.2015.

Whether first fifteen days for the purpose of police custody specified in section 167 (2) Cr.P.C. should be reckoned from the date of surrender of accused before High Court on 18.06.2015 or when the accused was first produced by the police before the designated court on 30.06.2015 for police remand?

Held, the period of fifteen days should be reckoned from 30.06.2015 when the accused was first produced by the police before the designated court.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 167(2)

पुलिस अभिरक्षा के उद्देश्य से प्रथम 15 दिन का प्रारंभिक बिन्दु क्या होता है?

प्रकरण के तथ्य :

अभियुक्त द्वारा एक आवेदन धारा 439 दं.प्र.सं. का माननीय उच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था – तब तक वह न्यायिक अभिरक्षा में नहीं था – उसने 18 जून 15 को उच्च न्यायालय के समक्ष समर्पण किया और उसे जबलपुर में न्यायिक अभिरक्षा में उसके जमानत आवेदन के निराकरण तक भेजा गया – उसका जमानत आवेदन पत्र उच्च न्यायालय द्वारा 29 जून, 2015 को खारिज किया गया – उस आदेश में न्यायालय ने कुछ अनुशासिक निर्देश अनुसंधान अधिकरण को दिये कि वह अभियुक्त को विधि अनुसार अभिरक्षा में लेवे – अनुसंधान अधिकारी ने अभियुक्त को 30 जून, 2015 को अभिरक्षा में लिया और उसे नामनिर्दिष्ट न्यायालय भोपाल में पेश किया – नामनिर्दिष्ट न्यायालय ने केवल 3 जुलाई, 2015 तक की पुलिस अभिरक्षा मंजूर की।

धारा 167(2) दं.प्र.सं. में विनिर्दिष्ट पुलिस अभिरक्षा के उद्देश्य से प्रथम 15 दिन की गणना अभियुक्त के उच्च न्यायालय के समक्ष समर्पण दिनांक 18 जून, 2015 से की जाना चाहिए या जब अभियुक्त को प्रथम बार पुलिस द्वारा नामनिर्दिष्ट न्यायालय के समक्ष 30 जून, 2015 को पुलिस रिमांड के लिए पेश किया उस दिन से की जाना चाहिए ?

अभिनिर्धारित किया गया 15 दिन की अवधि की गणना 30 जून, 2015 से की जाना चाहिए जब अभियुक्त को प्रथम बार पुलिस द्वारा नामनिर्दिष्ट न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया।

State of Madhya Pradesh v. Vipin Goyal

Order dated 03.07.2015 passed by the High Court of Madhya Pradesh in M.Cr.C. No. 10945 of 2015 (DB) (Unreported Order)

***235. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 173 (5) (a) and 207**

Effect of non-supply of copies of the image of electronic documents as computer, keyboard, laptop or hard disc etc. – How to consider? Held, prosecution is bound to supply only the copies of that documents which he proposes to rely – In this case, even computer, keyboard, laptop, or hard disc etc. have not been seized or sent to the FSL to get examined and obtain the report – Petition dismissed.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 173 (5) (ए) और धारा 207

इलेक्ट्रानिक अभिलेख जैसे, कम्प्यूटर, की-बोर्ड, लेपटाप या हार्ड डिस्क आदि की इमेज प्रतिलिपियाँ न देने का प्रभाव – कैसे विचार में लिया जाये ? अभिनिर्धारित किया गया अभियोजन केवल उन दस्तावेजों की प्रतिलिपियाँ देने को बाध्य होता है जिन पर निर्भर करने का उसका विचार होता है – इस मामले में कम्प्यूटर, की-बोर्ड, लेपटाप

या हार्ड डिस्क आदि जप्त नहीं की गई थी या परीक्षण कर के प्रतिवेदन प्राप्त करने के लिए विधि विज्ञान प्रयोगशाला भी नहीं भेजी गई थी – याचिका खारिज की गई।

Guman Singh v. State of M.P.

Order dated 17.07.2013 passed by the High Court of M.P. in M.Cr.C. No. 144 of 2013, reported in ILR (2014) MP 3059 (DB)

236. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 197

Allegation of police excess in connection with the investigation of a criminal case – Requirement of previous sanction for prosecution – Where the alleged conduct of accused has essential connection with the discharge of official duty, previous sanction for prosecution is necessary.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 197

एक आपराधिक प्रकरण के अनुसंधान के संबंध में पुलिस द्वारा जादती के अभियोग – अभियोजन के लिये पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता – जहां अभियुक्त के आचरण के बारे में अभियोग उसके कार्यालयीन कर्तव्य के निर्वाहन से प्रधानतः संबंधित हो, वहां अभियोजन चलाने की पूर्व स्वीकृति आवश्यक होती है।

D.T. Virupakshappa v. C. Subash

Judgment dated 27.04.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 722 of 2015, reported in AIR 2015 SC 2022

Extracts from the Judgment:

In the case before us, the allegation is that the appellant exceeded in exercising his power during investigation of a criminal case and assaulted the respondent in order to extract some information with regard to the death of one Sannamma, and in that connection, the respondent was detained in the police station for some time. Therefore, the alleged conduct has an essential connection with the discharge of the official duty. Under Section 197 of Cr.P.C., in case, the Government servant accused of an offence, which is alleged to have been committed by him while acting or purporting to act in discharge of his official duty, the previous sanction is necessary.

In *Om Prakash and others v. State of Jharkhand Through The Secretary, Department of Home, Ranchi and another*, (2012) 12 SCC 72 this Court, after referring to various decisions, particularly pertaining to the police excess, summed-up the guidelines at paragraph-32, which reads as follows:

“32. The true test as to whether a public servant was acting or purporting to act in discharge of his duties would be whether the act complained of was directly connected with his official duties or it was done in the discharge of his official duties or it was so integrally connected with or attached to his office as to be inseparable from it (K. Satwant Singh).

The protection given under Section 197 of the Code has certain limits and is available only when the alleged act done by the public servant is reasonably connected with the discharge of his official duty and is not merely a cloak for doing the objectionable act. If in doing his official duty, he acted in excess of his duty, but there is a reasonable connection between the act and the performance of the official duty, the excess will not be a sufficient ground to deprive the public servant of the protection (Ganesh Chandra Jew). If the above tests are applied to the facts of the present case, the police must get protection given under Section 197 of the Code because the acts complained of are so integrally connected with or attached to their office as to be inseparable from it. It is not possible for us to come to a conclusion that the protection granted under Section 197 of the Code is used by the police personnel in this case as a cloak for killing the deceased in cold blood.”

•
237. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 227 and 228

At the time of framing of charge, only charge-sheet along with the accompanying material is to be considered so as to satisfy whether a *prima facie* case is made out against the accused – It has to be the subjective satisfaction of the court framing charges – Being a pre-trial stage, in revisional jurisdiction, the High Court has only examined the material before it to reach its conclusions – Appeal allowed and order of ASJ regarding framing charges is restored.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 227 एवं 228

आरोप विरचित करते समय अभियोग पत्र और उसके साथ संलग्न सामग्री को विचार में लिया जाता है, ताकि यह संतुष्टि हो सके की प्रथम दृष्टया मामला अभियुक्त के विरुद्ध बनता है – यह आरोप विरचित करने वाले न्यायालय का व्यक्तिपरक संतोष होता है – विचारण पूर्व की अवस्था होने से, पुनरीक्षण के क्षेत्राधिकार में, उच्च न्यायालय केवल उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री का परीक्षण निष्कर्ष पर पहुंचने के लिये करती है – अपील स्वीकार की गई और अपर सत्र न्यायाधीश का आरोप विरचित करने का आदेश पुनः कायम किया गया।

State of M.P. v. Rakesh Mishra

Judgment dated 23.03.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 498 of 2015, reported in 2015 (2) JLJ 283 (SC)

Extracts from the Judgment:

The High Court allowed the revision petitions on the findings that the original building permission was granted by J.M. Awasiya and it was granted after approval from High Rise Building Committee vide letter dated 09.12.1993. The accused

had merely granted a revision of the building plan which did not require any fresh approval from the High Rise Building Committee. Also, the High Court found that the approval of Fire Department had been taken vide letter dated 18.10.1994. It was only later, that vide letter dated 19.10.1997 the fire authorities withdrew their NOC. The High Court found that the Completion Certificate was also granted while the Fire NOC was in force and it was in conformity with Rule 31 of Madhya Pradesh Bhumi Vikas Niyam, 1984. The High Court concluded that the Building Officer was under no obligation to inform the property tax department of the Indore Municipal Corporation about the completion certificate. In fact, in regard to property tax evasion, the alleged amount of ` 5,49,000/- was paid by Hotel Sayaji when it was demanded by the department.

The major argument advanced by the State of Madhya Pradesh before us has been that the High Court traversed beyond the permissible limit while deciding the legality of order framing charges, being a pre-trial stage. Various authorities have been cited before us to prove that point. However, it would suffice to say that the law on this point is crystal clear that only charge-sheet along with the accompanying material is to be considered at the stage of framing of charges, so as to satisfy whether a *prima facie* case is made out. It has to be the subjective satisfaction of the Court framing charges. In our opinion, the High Court has only examined the material before it against the prevailing law to reach its conclusions. Thus, the impugned judgment may not be assailable on this ground.

238. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 319

Power under section 319 Cr.P.C. to summon additional accused, When cannot be exercised? Held, the court should not exercise such power unless a higher standard of evidence for the purpose of forming opinion to summon a person is available – In extraordinary cases, such power can be invoked sparingly.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 319

धारा 319 दं.प्र.सं. के अधीन अतिरिक्त अभियुक्त को सम्मन करने की शक्ति – कब प्रयोग नहीं की जा सकती ? अभिनिर्धारित किया गया, न्यायालय को ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए जब तक कि उच्च स्तर की साक्ष्य एक व्यक्ति को समन करने की राय बनाने के लिए उपलब्ध न हो – असाधारण प्रकरणों में ही ऐसी शक्तियों को बहुत कम प्रयोग करना चाहिए।

Rajendra Singh & anr. v. State of M.P.

Order dated 08.08.2014 passed by the High Court of M.P. in Cr.Rev. No. 837 of 2013, reported in ILR (2014) MP 2709

Extracts from the Order:

Firstly I would like to refer the judgment of the Hon'ble Supreme Court in the case of *Sarabjit Singh and anr. v. State of Punjab, AIR 2009 SC 2792*. In this case the Hon'ble Court has elaborately discussed the scope, object and nature

of evidence for exercise of power under Section 319 of Cr.P.C., which is as under: –

“The provision of Section 319 of the Code, on a plain reading, provides that such an extraordinary case has been made out must appear to the Court. Has the criterion laid down by this Court in *Municipal Corporation of Delhi* (supra) been satisfied is the question? Indisputable, before an additional accused can be summoned for standing trial, the nature of the evidence should be such which would make our grounds for exercise of extraordinary power. The materials brought before the Court must also be such which would satisfy the Court that it is one of those cases where its jurisdiction should be exercised sparingly.

We may notice that in *Y. Saraba Reddy v. Puthur Rami Reddy and anr.*, (JT 2007 (6) SC 460), this Court opined:

“.. Undisputedly, it is an extraordinary power which is conferred on the Court and should be used very sparingly and only if compelling reasons exist for taking action against a person against whom action had not been taken earlier. The word “evidence” in Section 319 contemplates that evidence of witnesses given in the Court”

An order under Section 319 of the Code, therefore, should not be passed only because the first information or one of the witnesses seeks to implicate other person(s). Sufficient and cogent reasons are required to be assigned by the Court so as to satisfy the ingredients of the provisions. Mere ipse dixit would not serve the purpose. Such an evidence must be convincing one at least for the purpose of exercise of the extraordinary jurisdiction.

For the aforementioned purpose, the Courts are required to apply stringent tests; one of the tests being whether evidence on record is such which would reasonably lead to conviction of the person sought to be summoned.

The observation of this Court in *Municipal Corporation of Delhi* (supra) and other decisions following the same is that mere existence of a prima facie case may not serve the purpose. Different standards are required to be applied at different stages. Whereas the test of prima facie case may be sufficient for taking cognizance of an offence at the stage of framing of charge; the Court must be satisfied that there exists a strong suspicion. While framing charge in terms of Section 227 of the Code, the Court must consider the entire

materials on record to form an opinion that the evidence if unrebutted would lead to a judgment of conviction. Whether a higher standard be set up for the purpose of invoking the jurisdiction under Section 319 of the Code is the question. The answer to these question should be rendered in the affirmative. Unless a higher standard for the purpose of forming an opinion to summon a person as an additional accused is laid down, the ingredients thereof, viz., (i) an extraordinary case, and (ii) a case for sparingly exercise of jurisdiction, would not be satisfied.”

•
239. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 439 (2)

Cancellation of bail – If is not found that accused had misused the liberty after being released on bail, the same cannot be cancelled – Legal position relating to cancellation of bail reiterated.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 439 (2)

जमानत निरस्त करना – अभियुक्त ने जमानत पर रिहा किये जाने के बाद स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया हो यह नहीं पाया गया – जमानत निरस्त नहीं की जा सकती – जमानत निरस्तीकरण के बारे में विधिक स्थिति पुनः बतलाई गई।

Swatantra Tripathi v. State of M.P. and anr.

Order dated 13.04.2015 passed by the High Court of M.P. in M.Cr.C. No. 2527 of 2014, reported in 2015 (II) MPJR SN 22

Extract from the Order:

In *State through the Delhi Administration v. Sanjay Gandhi, AIR 1978 SC 961* the Supreme Court has observed thus in para 13 and 24:

Para 13 -"Rejection of bail when bail is applied for is one thing and cancellation of bail already granted is quite another. It is easier to reject a bail application in a non-bailable case than to cancel a bail granted in such a case. Cancellation of bail necessarily involves the review of a decision already made and can by large be permitted only if by reason of supervening circumstances"

Para 24 -"The power to take back in custody an accused (under the provisions of Section 439(2) of the Cr.P.C.) who has been enlarged on bail has to be exercised with care and circumspection."

In *Daulatram and others v. State of Haryana, 1994 (3) Crimes 1013 = 1995(1) SCC 349*, the Supreme court has held as under:

“Very cogent and overwhelming circumstances are necessary for cancellation of bail. Bail once granted should not be cancelled in a mechanical manner”

In *Prakash Kadam and others v. Ram Prasad Vishwanath Gupta and another*, (2011) 6 SCC 189, the Supreme Court has observed thus:-

“In considering whether to cancel the bail the Court has also to consider to gravity and nature of the offence, prima-facie case against the accused, the position and standing of the accused, if there are very serious allegations against the accused his bail may be cancelled even if he has not misused the bail granted to him.”

In *Pooran v. Ram Vilas and another*, (2001) 6 SCC 338, the Supreme Court has observed thus:-

“The concept of setting aside as unjustified, illegal or perverse order is totally different from the cancelling an order of bail on the ground that the accused had misconducted himself are because of some supervening circumstances warranting such cancellation”

In *Ash Mohammed v. Shiv Raj Singh @ Lalla Babu and another*, 2012 (4) Crimes 144 (SC), the Supreme Court has stated as under:-

“There is no absolute rule that once bail is granted to the accused then it can only be cancelled if there is likelihood of misuse of the bail”

In *Subodh Kumar Yadav v. State of Bihar*, (2009) 14 SCC 638, the Supreme Court has observed thus:-

“If a superior court finds that court granting bail had acted on irrelevant material, or if there was non-application of mind or failure to take note of any statutory bar to grant bail, or if there was manifest impropriety e.g. failure to hear Public Prosecutor/ complainant where required, order for cancellation of bail can be made (para16)”.

In *Bhagirathsinh v. State of Gujarat*, (1984) 1 SCC 284, the Supreme Court has held as under:-

“Cancellation should not be by way of punishment even if prima facie case against the accused is established.”

In *Nityanand Rai v. State of Bihar*, (2005) 4 SCC 178, the Supreme Court has stated in following words as to the grounds when the bail may be cancelled.

“Grounds for cancellation of bail should be those which arose after the grant of bail and should be referable to the conduct of the accused while on bail.”

In *Ramcharan v. State of M.P.*, (2004) 13 SCC 617 the Supreme Court has held on the point of re-appreciation of facts while considering on application for cancellation of bail thus:-

“Bail can be cancelled on existence of cogent and overwhelming circumstances but not on reappreciation of the facts of the case.”

•
***240. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 482**

EXCISE ACT, 1915 (M.P.) – Section 34 (1) & (2)

Quashing of criminal proceedings – Name of accused was not stated in the FIR – He has been implicated as an accused only on the basis of statement made under section 27 of the Evidence Act of co-accused – There is no other evidence against accused on record – Proceedings against accused quashed.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 482

आबकारी अधिनियम, 1915 (म.प्र.) – धारा 34 (1) & (2)

दाण्डिक कार्यवाही अभिखंडित करना – अभियुक्त का नाम प्रथम सूचना प्रतिवेदन में दर्ज नहीं था – उसे सह-अभियुक्त के धारा 27 भारतीय साक्ष्य अधिनियम के तहत दिये गये कथन के आधार पर अभियुक्त के रूप में लिप्त किया गया था – अभिलेख पर अभियुक्त के विरुद्ध कोई अन्य साक्ष्य नहीं थी – अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही अभिखंडित की गई।

Banwari Singh Gurjar v. State of M.P. & anr.

Judgment dated 31.10.2014 passed by the High Court of M.P. in M.Cr.C. No. 5388 of 2013, reported in ILR (2014) MP 3064

•
241. EVIDENCE ACT, 1872 – Section 65 (b)

CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 91 and 92

N.D.P.S. Act, 1988 – Section 8/18

Accused filed an application under sections 91 and 92 Cr.P.C. for preserving record of call details of officers of raiding party – Same has been is rejected by the Special Judge, NDPS Act – Submission of accused that call details are of utmost importance to the defence of the accused – High Court allowed the petition of accused and directed the concerned Telephone Company that record of call details shall be preserved till the examination of officers concerned Narcotics Department.

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 65 (बी)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 91 और 92

एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1988 – धारा 8/18

अभियुक्त ने एक आवेदन धारा 91 और 92 द.प्र.सं. के अधीन, छापादल के अधिकारियों के काल डिटेल्स के अभिलेख को संरक्षित रखने के लिए पेश किया – जिसे विशेष न्यायाधीश एन.डी.पी.एस. एक्ट ने खारिज कर दिया – अभियुक्त का पक्ष यह था कि वे काल डिटेल्स अभियुक्त के बचाव के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है – उच्च न्यायालय ने अभियुक्त की याचिका स्वीकार की व निर्देश दिया कि संबंधित टेलीफोन कंपनी काल डिटेल्स के अभिलेख नारकोटिक्स विभाग के संबंधित अधिकारीगण का परीक्षण (कथन) हो जाने तक संरक्षित रखेगी।

Himmat Singh v. CBN through Ashish Chakrawarti

Order dated 12.05.2015 passed by the High Court of M.P. in Misc. Criminal Case No. 10430 of 2014, reported in 2015 (II) MPWN 66

Extracts from the Order:

On considering the submissions made by the learned counsel for the petitioner I find that identical petition has been decided in the in the matter of *Kripal Singh v. M.P. State through P.S. Kendriya Narcotic Bureau, Miscellaneous Criminal Case No. 9274 of 2012* thus :

“Hence exercising the inherent powers of this Court under Section 482 of the Cr.P.C., it is directed that BSNL Telephone Company or any other company in whose name the foresaid cellphones are recorded shall preserve record till the officers concerned of the Narcotics Department are examined in this regard. However, it is made clear that the company shall not disclose the details of the record or transcription available before it. The petitioner shall give an undertaking in writing before the Trial Court to the effect that he shall not tamper with the said evidence and shall not try influence or approach the officer concerned in this regard”

242. FAMILY COURTS ACT, 1984 – Sections 7 (1) Exp. (f) and 7 (2) (a)

CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 125

- (i) **Husband took voluntary retirement after judgment dated 17.02.2012 – Whether it is a ground for reducing the amount of maintenance? Held, No – It is the obligation of the husband to maintain his wife – He cannot be allowed to plead that he is unable to maintain the wife due to financial constraints as long as he is able to earn.**
- (ii) **Whether an application under section 125 Cr.P.C., filed by a divorced Muslim women, is maintainable before the Family Court? Held, Yes – *Danial Latifi v. Union of India, (2001) 7 SCC 740, Khatoon Nisa v. State of U.P., (2014) 12 SCC 646, Shamim Bano v. Asraf Khan, (2014) SCC 636 and Shabana Bano v. Imran Khan, (2010) 1 SCC 666* relied on.**

परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 – धाराएं 7 (1) का स्पष्टीकरण (एफ) और 7 (2)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 125

- (i) पति ने निर्णय दिनांक 17.02.2012 के बाद स्वेच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली – क्या यह भरण पोषण की राशि घटाने या कम करने के लिए एक आधार हो सकता है? अभिनिर्धारित किया गया, नहीं – यह पति का दायित्व है कि वह पत्नी को सहारा दे या भरण-पोषण दे उसे यह बचाव लेने के लिए अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह पत्नी को भरण-पोषण देने या सहारा देने में आर्थिक कठिनाईयों के कारण असमर्थ है जबकि वह कमाने के योग्य है।
- (ii) क्या एक तलाक शुदा मुस्लिम महिला द्वारा प्रस्तुत आवेदन धारा 125 दं.प्र.सं., परिवार न्यायालय के समक्ष, प्रचलन योग्य है? अभिनिर्धारित किया गया, हाँ – न्यायदृष्टांत डेनियल लतिफी विरुद्ध यूनियन ऑफ इंडिया, (2001) 7 एससीसी 740, खातून निशा विरुद्ध स्टेट ऑफ यू.पी., (2014) 12 एससीसी 646 और शमीम बानों विरुद्ध असरफ खान, (2014) 12 एससीसी 636 तथा शबाना बानों विरुद्ध इमरान खान, (2010) 1 एससीसी 666 पर भरोसा किया गया।

Shamima Farooqui v. Shahid Khan

Judgment dated 06.04.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 564 of 2015, reported in (2015) 5 SCC 705

Extracts from the Judgment:

First of all, we intend to deal with the applicability of Section 125 Cr.P.C. to a Muslim woman who has been divorced. In *Shamim Bano v. Asraf Khan*, (2014) 12 SCC 636, this Court after referring to the Constitution Bench decisions in *Danial Latifi v. Union of India*, (2001) 7 SCC 740 and *Khatoon Nisa v. State of U.P.*, (2014) 12 SCC 646 had opined as follows:-

“The aforesaid principle clearly lays down that even after an application has been filed under the provisions of the Act, the Magistrate under the Act has the power to grant maintenance in favour of a divorced Muslim woman and the parameters and the considerations are the same as stipulated in Section 125 of the Code. We may note that while taking note of the factual score to the effect that the plea of divorce was not accepted by the Magistrate which was upheld by the High Court, the Constitution Bench opined that as the Magistrate could exercise power under Section 125 of the Code for grant of maintenance in favour of a divorced Muslim woman under the Act, the order did not warrant any interference. Thus, the emphasis was laid on the retention of the power by the Magistrate under Section 125 of the Code and the effect of ultimate consequence.

This being the position in law, it is the obligation of the husband to maintain his wife. He cannot be permitted to plead that he is unable to maintain the wife due to financial constraints as long as he is capable of earning.

243. HINDU MARRIAGE ACT, 1955 – Section 13

Divorce petition on the ground of epilepsy, proof of – Burden of proving that wife was suffering from epilepsy even before the marriage and was disclosed by wife only after marriage, is on the husband by adducing cogent evidence – Neuro physician cannot give a definite opinion about such ailment – Therefore, Trial Court exceeded in exercise of its jurisdiction in sending wife for medical examination.

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 – धारा 13

मिरगी के आधार पर विवाह विच्छेद याचिका में प्रमाण – यह अकाट्य साक्ष्य द्वारा प्रमाणित करने का भार पति पर होता है कि पत्नि विवाह के पूर्व से मिरगी (की बीमारी) भोग रही थी जो (तथ्य) पत्नि द्वारा विवाह के बाद प्रकट किया गया – न्यूरो फिजिशियन इस बारे में निश्चित राय नहीं दे सकते हैं – इस कारण, विचारण न्यायालय ने पत्नि को चिकित्सा परीक्षण के लिए भेजकर उनके, क्षेत्राधिकार का अतिरेक किया है।

Veenita Bai v. Dinesh Kumar

Order dated 18.03.2015 passed by the High Court of M.P. in Writ Petition No. 8308 of 2013, reported in 2015 (2) MPLJ 576

Extracts from the Order:

It is not in dispute that the proceedings initiated by the respondent are to be tried as a civil suit. It is to be seen from the pleadings in the application for divorce that the allegations were made that the petitioner herein was suffering from epilepsy even before the marriage and this fact was disclosed by the petitioner herein to the respondent after the marriage. Certain incidents have been mentioned by the respondent and the allegation was made that petitioner was visiting her parents every month for the purposes of bringing the medicines for the said ailment. It is the allegation made in the application by the respondent that he took the petitioner herein to the doctors, get her examined and the doctors have opined that the petitioner was suffering from mental disorder. If that was the situation, the respondent was required to prove all those facts by adducing the evidence. Since it was stated that the respondent was not having good financial condition to get the petitioner treated, though he has tried his best, these aspects were required to be proved by the respondent himself. The burden of proving such allegation was on the respondent with full force because the petitioner herein has specifically denied all those allegations in her written statement filed before the Trial Court.

To what extent the evidence was made available in this respect by the respondent has to be examined. If the documents filed along with the application for vacating interim stay are looked into, it would be amply clear that the petitioner was taken to the Medical Board even after filing of the suit for divorce. The suit for divorce was filed in the month of November, 2011, the petitioner was examined by the Medical Board on 19.11.2012 and from this it is clear that only this much was said that the petitioner can be referred to the Neuro Physician for the purposes of getting her medically examined. As alleged by the respondent, the EEG test of the petitioner was conducted on 28.02.2011 at Bhopal and in that report nothing was found, rather it was a note made in the said report that normal EEG does not exclude the epilepsy. This being so, the very object of writing a report on 19.11.2012 was not enough to hold that the petitioner was required to be put to such medical examination. Even otherwise it was the responsibility of the respondent to prove such fact and in the course of adducing evidence if it is found by the Trial Court that such medical examination of the petitioner is necessary, order in that respect could be passed. The respondent has not started his evidence and at that stage it was not to be held that medical examination of the petitioner was necessary.

In *Rekha Ravindra Kumar v. Ravindra Kumar Ramchandra*, 1993 MPLJ 719, this Court while dealing with such circumstances has categorically held that the well settled law is that the alleged mental disorder must be proved to be existing on the date the suit was filed. If that mental disorder was not on the date when the claim was made, on that ground alone the decree of divorce cannot be granted. A Division Bench of the Chhattisgarh High Court in *Khumesh Deshmukh v. Smt. Padmini Deshmukh*, 2010 (5) MPHT 88 (CG), has held that the concept of proof beyond the shadow of doubt is to be applied only in the criminal trials and not to the civil matters and specially not to the matters to such delicate personal relationship, in terms of the law laid down by the Apex Court in *Smt. Mayadevi v. Jagdish Prasad*, AIR 2007 SC 1426. If it was a case of a fraud, it was the duty on the part of the respondent to establish that such fact of mental disorder, though was in existence in the petitioner much before the solemnization of marriage, was deliberately suppressed by the family members of the petitioner to get her married with the respondent. These aspects if are taken into consideration, it would be clear that in case such allegations were made by the respondent, at least he was to establish the case to that extent that in fact a fraud was committed with him by the family members of the petitioner. For that he was not required to obtain a report of subsequent ailment which the petitioner has developed. In fact he was required to prove that right from very beginning the petitioner was suffering from such ailment and for that reason since the marriage is said to be fraudulent one, the same was liable to be declared as null and void or a decree of divorce was to be granted to the respondent.

Nothing is stated in the application so filed by the respondent before the Court below nor such application is placed on record. Even when the Chief Medical and Health Officer, Harda was directed to give such medical report,

prima facie it was said that there was no symptoms available in the petitioner to show that she was suffering from Neurological ailment or epilepsy. The Neuro Physician, who has examined the petitioner on earlier occasion, himself could not give a definite opinion about such ailment as is clear from the report placed on record with the I.A. for vacating stay filed by the respondent himself, therefore, it was not open to the Trial Court to direct sending of the petitioner for medical examination. Merely because the petitioner was sent to the medical examination before the Medical Board, for the purpose of creating evidence, the petitioner was not required to be referred to medical examination at Indore. This view has been expressed by the Apex Court in *Sharda v. Dharmpal*, (2003) 4 SCC 493, wherein it is held that the power of matrimonial Court is extended for issuance of such direction but that power is to be exercised only if prima facie case is made out and there is sufficient material before the Court, produced by the person claiming such medical examination.

In view of the aforesaid discussion, it is clear that the Court below has exceeded in exercise of jurisdiction in allowing the application of respondent by the impugned order. Therefore, the said order cannot be countenanced.

•
***244. HINDU MARRIAGE ACT, 1955 – Section 13 (1) (ia)**

Divorce on the ground of mental cruelty – If one spouse abuses the other as being born from a prostitute and summons the police on false or flimsy grounds, and makes it impossible for any close relatives to visit or stay in the matrimonial home, it cannot be termed as “wear and tear” of family life – Held, trial court rightly granted the decree of divorce on the ground of mental cruelty.

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 – धारा 13 (1) (ia)

मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह विच्छेद – यदि एक स्पाउस दूसरे को वेश्या से उत्पन्न कहते हुए दुर्व्यवहार करता है – असत्य या तुच्छ आधारों पर पुलिस को बुलाता है – किस भी निकट रिश्तेदार को वैवाहिक गृह में आने या रुकने को असंभव बना देता है – यह नहीं कहा जा सकता कि यह पारिवारिक जीवन के झगड़े हैं – अभिनिर्धारित किया गया, विचारण न्यायालय ने मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह विच्छेद की आज्ञा सही रूप से दी है ।

Vinod Kumar Subbiah v. Saraswathi Palaniappan

Judgment dated 24.04.2015 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No.5511 of 2014, reported in 2015 (2) MPWN 44 (SC)

***245. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 97, 100, 302 and 325**

Right of private defence – Whether or not a right of private defence of person or property was available to an accused is a question of fact or at least a mixed question of law and fact to be decided in the facts and circumstances of each case by the concerned Court – In this case, incident had been taken place in the house of complainant, accused persons were found to be the aggressors – They fired deceased from a short distance of four to five feet, therefore, right of private defence was not available to the accused persons and question of exceeding it does not arise for consideration – Appeal dismissed.

भारतीय दंड संहिता, 1860 – धाराएं 97 100 302 और 325

निजी प्रतिरक्षा का अधिकार – एक अभियुक्त को शरीर या संपत्ति का निजी प्रतिरक्षा का अधिकार उपलब्ध था या नहीं यह एक तथ्य का प्रश्न या कम से कम विधि और तथ्य का एक मिश्रित प्रश्न होता है जो संबंधित न्यायालय द्वारा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में निर्धारित किया जाता है – इस मामले में घटना परिवादी के घर में हुई थी अभियुक्तगण आक्रमणकारी या अग्रेसर पाये गये थे – उन्होंने मृतक पर चार से पाँच फिट की दूरी से गोली चलाई थी, इस कारण, अभियुक्तगण को निजी प्रतिरक्षा का अधिकार उपलब्ध नहीं था अतः उसके उल्लंघन या (अतिरेक) का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है – अपील खारीज की गई।

Raj Singh v. State of Haryana etc.

Judgment dated 23.04.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No.701 of 2015, reported in 2015 CriLJ 2803 (SC) (Three Judge bench)

•

246. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 109, 120-B, 420, 468 and 477

CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 197

Whether sanction under section 197 Cr.P.C. is necessary to initiate criminal proceedings in respect of offences under sections 420, 468, 477-A, 120-B r/w/s 109 IPC? Held, No, because cheating, fabrication of records or misappropriation cannot be said to be in discharge of official duty by a public servant – Need of sanction u/s 197 Cr.P.C. is to protect him from malicious or vexatious prosecution – Such protection from harassment is given in public interest, it cannot be treated as shield to protect corrupt public servants.

भारतीय दंड संहिता, 1860 – धाराएं 109, 120-बी, 420, 468 और 477

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 197

क्या धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की अनुमति, धारा 420, 468, 477-ए, 120-बी सहपठित धारा 109 भा.द.सं. के बारे में दंडिक कार्यवाही प्रारंभ करने के लिये, आवश्यक होती है? अभिनिर्धारित, नहीं, छल, अभिलेखों की कुटरचना या दुर्विनियोग

एक लोकसेवक द्वारा कार्यालयीन कर्तव्य के निर्वाहन में (कार्य करना) नहीं कहा जा सकता – धारा 197 की अनुमति की आवश्यकता, उसे (लोक सेवक को) विद्वेषपूर्ण या तंग करने वाले अभियोजन से संरक्षा करने के लिए है – अभिन्नास से ऐसी संरक्षा लोकहित दी गई है, इसे भ्रष्ट लोक सेवकों को बचाने के लिए ढाल की तरह इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।

Inspector of Police and another v. Battenapatla Venkata Ratnam and another

Judgment dated 13.04.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 129 of 2013, reported in 2015 CriLJ 2942 (SC)

Extracts from the Judgment:

No doubt, while the respondents indulged in the alleged criminal conduct, they had been working as public servants. The question is not whether they were in service or on duty or not but whether the alleged offences have been committed by them “while acting or purporting to act in discharge of their official duty”. That question is no more res integra. In *Shambhoo Nath Misra v. State of U.P. and others*, (1997) 5 SCC 326, at paragraph 5, this Court held that:

“5. The question is when the public servant is alleged to have committed the offence of fabrication of record or misappropriation of public fund etc. can he be said to have acted in discharge of his official duties. It is not the official duty of the public servant to fabricate the false records and misappropriate the public funds etc. in furtherance of or in the discharge of his official duties. The official capacity only enables him to fabricate the record or misappropriate the public fund etc. It does not mean that it is integrally connected or inseparably interlinked with the crime committed in the course of the same transaction, as was believed by the learned Judge. Under these circumstances, we are of the opinion that the view expressed by the High Court as well as by the trial court on the question of sanction is clearly illegal and cannot be sustained.”

In *Parkash Singh Badal v. State of Punjab and others*, (2007) 1 SCC 1 : (AIR 2007 SC 1274), at paragraph 20, this Court held that:

“20. The principle of immunity protects all acts which the public servant has to perform in the exercise of the functions of the Government. The purpose for which they are performed protects these acts from criminal prosecution. However, there is an exception. Where a criminal act is performed under the colour of authority but which in reality is for the public servant’s own pleasure or benefit then such acts shall not be protected under the doctrine of State immunity.”

and thereafter, at paragraph 38, it was further held that:

“38. The question relating to the need of sanction under Section 197 of the Code is not necessarily to be considered as soon as the complaint is lodged and on the allegations contained therein. This question may arise at any stage of the proceeding. The question whether sanction is necessary or not may have to be determined from stage to stage.”

In a recent decision in *Rajib Ranjan and others v. R. Vijaykumar, (2015) 1 SCC 513 : (AIR 2014 SC (Cri.) 2267)*, at paragraph-18, this Court has taken the view that ... “even while discharging his official duties, if a public servant enters into a criminal conspiracy or indulges in criminal misconduct, such misdemeanour on his part is not to be treated as an act in discharge of his official duties and, therefore, provisions of Section 197 of the Code will not be attracted”.

247. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 149, 302 and 304

- (i) Effect of non-framing of specific charge under section 149 of IPC – Each of accused persons was well aware that they are tried for being a member of the unlawful assembly which was armed with weapons – There is no evidence on record that shows any prejudice has been caused to the accused persons on account of absence of that particulars charge – Non-framing of such charge, held, immaterial.**
- (ii) Deceased was a witness against an accused in another murder case, so accused had strong motive against him – As many as five stab injuries were found at different parts of the body of the deceased – Offence under section 302 of IPC held, clearly made out – Appeal dismissed.**

भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1860 – धाराएं 149, 302 और 304

- (i) धारा 149 भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन विनिर्दिष्ट आरोप विरचित न करने का प्रभाव – प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति यह अच्छी तरह जानता था कि उसका विचारण एक अवैध सभा का सदस्य होने जो की आयुधों से सुसज्जित थे, किया गया है – ऐसी कोई साक्ष्य अभिलेख पर नहीं थी जो यह दर्शाती हो की विनिर्दिष्ट आरोप के अभाव के कारण अभियुक्त के हितों पर कोई प्रतिकूल असर कारित हुआ है – अभिनिर्धारित किया गया की ऐसे आरोप विरचित न करना – अतात्विक है।**
- (ii) मृतक, एक अभियुक्त के विरुद्ध अन्य हत्या के प्रकरण में साक्षी था, अतः अभियुक्त का उसके विरुद्ध मजबूत हेतूक था – मृतक के शरीर के विभिन्न अंगों पर 5 चाकू की चोटें पाई गयी – अभिनिर्धारित किया गया, धारा 302 भा.दं.सं. के अधीन अपराध स्पष्ट रूप से बनता है – अपील खारीज की गई।**

Vutukuru Lakshmaiah v. State of Andhra Pradesh

Judgment dated 24.04.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 2047 of 2008, reported in 2015 (2) Crimes 349 (SC)

Extracts from the Judgment:

First, we shall advert to the issue of non-framing of charge under Section 149 IPC. While dealing with the said issue, in *Willie (William) Slaney v. State of M.P.*, AIR 1956 SC 116, Vivian Bose, J., observed that every reasonable presumption must be made in favour of the accused person; he must be given the benefit of every reasonable doubt. The same broad principles of justice and fair play must be brought to bear when determining a matter of prejudice as in adjudging guilt. The learned Judge proceeded to state that all said and done, the Court is required to see whether the accused had a fair trial, whether he knew what he was being tried for, whether the main facts sought to be established against him were explained to him fairly and whether he was given a full and fair chance to defend himself. Thereafter, Bose, J. proceeded to observe thus:

“In adjudging the question of prejudice the fact that the absence of a charge, or a substantial mistake in it, is a serious lacuna will naturally operate to the benefit of the accused and if there is any reasonable and substantial doubt about whether he was, or was reasonably likely to have been, misled in the circumstances of any particular case, he is as much entitled to the benefit of it here as elsewhere; but if, on a careful consideration of all the facts, prejudice, or a reasonable and substantial likelihood of it, is not disclosed the conviction must stand; also it will always be material to consider whether objection to the nature of the charge, or a total want of one, was taken at an early stage.

If it was not, and particularly where the accused is defended by counsel (*Atta Mohammad v. King-Emperor*, AIR 1930 PC 57) it may in a given case be proper to conclude that the accused was satisfied and knew just what he was being tried for and knew what was being alleged against him and wanted no further particulars, provided it is always borne in mind that “no serious defect in the mode of conducting a criminal trial can be justified or cured by the consent of the advocate of the accused” (*Abdul Rahman v. King-Emperor*, AIR 1927 PC 44). But these are matters of fact which will be special to each different case and no conclusion on these questions of fact in any one case can ever be regarded as a precedent or a guide for a conclusion of fact in another, because the facts can never be alike in any two cases “however” alike they may seem. There is no such thing as

a judicial precedent on facts though counsel, and even Judges, are sometimes prone to argue and to act as if there were.”

Chandrasekhara Aiyar, J., in his concurring opinion stated thus:-

“A case of complete absence of a charge is covered by Section 535, whereas an error or omission in a charge is dealt with by Section 537. The consequences seem to be slightly different. Where there is no charge, it is for the court to determine whether there is any failure of justice. But in the latter, where there is mere error or omission in the charge, the court is also bound to have regard to the fact whether the objection could and should have been raised at an earlier stage in the proceedings.”

After so stating, the learned Judge opined that generally in cases of omission to frame a charge is not per se fatal. Eventually, he ruled thus:-

“Sections 34, 114 and 149 of the Indian Penal Code provide for criminal liability viewed from different angles as regards actual participants, accessories and men actuated by a common object or a common intention; and the charge is a rolled-up one involving the direct liability and the constructive liability without specifying who are directly liable and who are sought to be made constructively liable.

In such a situation, the absence of a charge under one or other of the various heads of criminal liability for the offence cannot be said to be fatal by itself, and before a conviction for the substantive offence, without a charge can be set aside, prejudice will have to be made out. In most of the cases of this kind, evidence is normally given from the outset as to who was primarily responsible for the act which brought about the offence and such evidence is of course relevant.”

After 1973 Code came into existence, two-Judge Bench in *Annareddy Sambasiva Reddy v. State of A.P.*, (2009) 12 SCC 546 relying on the principles enunciated in *Willie (William) Staney* (supra), has opined that the legal position stated by the larger Bench would hold good after enactment of Code of Criminal Procedure, 1973 as well in the light of Sections 215, 216, 218, 221 and 464 contained therein. Proceeding further, the Court has ruled:-

“Is non-mentioning of Section 149 in Charge 4 and Charge 5 a fundamental defect of an incurable illegality that may warrant setting aside the conviction and sentence of the appellants? We do not think so. Non-framing of a charge under Section 149 IPC, on the face of the charges framed against the appellants would not vitiate their conviction;

more so when the accused have failed to show any prejudice in this regard. The present case is a case where there is mere omission to mention Section 149 in Charges 4 and 5 which at the highest may be considered as an irregularity and since the appellants have failed to show any prejudice, their conviction and sentence is not at all affected. Tenor of cross-examination of PW 1 and PW 3 by the defence also rules out any prejudice to them.”

The last plank of submission of the learned senior counsel for the appellants is that the appellants had no intention to commit the murder of the deceased. It is also submitted by him that when death has occurred three days after the incident, it is demonstrable that there was no intention on the part of the accused-appellants to kill him. To appreciate the said submission, we have perused the injury report. We find that there are five stab injuries at different parts of the body i.e. near right axilla, below the right axilla, over right hypochondrium at mid clavicular line, over the border of right scapula and over mid spinal region at the level of 4th and 5th lumbar vertebra. The evidence on record shows that the deceased was assaulted as he was a witness in Velongini Raja's murder case wherein the accused-appellant, A-1, was an accused. There are cases where this Court has converted offence from 302 IPC to 304 Part I IPC, regard being had to the genesis of occurrence or the nature of injuries. It is because one of the relevant factors to gather the intention is the nature of injury inflicted on the deceased. In the instant case, considering the nature of injuries and the previous animosity, we are of the considered opinion that it is not a fit case where the offence under Section 302 IPC should be converted to Section 304 Part I IPC.

***248. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 149, 299, 300, 302 and 304**

Culpable homicide and murder – When a case falls under section 302 or 304 Part I or Part II of IPC – Factors to be seen – Reiterated – It can be gathered generally from combination of a few or several of the following, amongst other factors : –

- (i) Nature of the weapon used;**
- (ii) Whether the weapon was carried by the accused or was picked up from the spot;**
- (iii) Whether the blow is aimed at a vital part of the body;**
- (iv) The amount of force employed in causing injury;**
- (v) Whether the act was in the course of sudden quarrel or sudden fight or free for all fight;**
- (vi) Whether the incident occurs by chance or whether there was any premeditation;**
- (vii) Whether there was any prior enmity or whether the deceased was a stranger;**

- (viii) Whether there was any grave and sudden provocation, and if so, the cause for such provocation;
- (ix) Whether it was in the heat of passion;
- (x) Whether the person inflicting the injury has taken undue advantage or has acted in a cruel and unusual manner;
- (xi) Whether the accused dealt a single blow or several blows, etc.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धाराएं 149, 299, 300, 302 और 304

सदोष मानव वध और हत्या – कब एक मामला धारा 302 या 304 भाग – I या भाग – II, भा.दं.सं. में आता है – तथ्य जो देखने होंगे – पुनः बतलाये गये – यह सामान्यतः अन्य तथ्यों के साथ निम्न तथ्यों में से कुछ तथ्यों या कई तथ्यों के संयुक्त प्रभाव से संग्रहित किया जा सकता है :-

- (i) उपयोग किये गये हथियार की प्रकृति;
- (ii) क्या हथियार अभियुक्त साथ में लाया था या उसने घटना स्थल से उठाया था;
- (iii) क्या प्रहार शरीर के मर्म अंग को लक्ष्य बनाकर किया गया था;
- (iv) उपहति कारित करने में प्रयुक्त किया गया बल;
- (v) क्या कृत्य अचानक झगड़े के दौरान किया गया था या अचानक लड़ाई थी या सभी की स्वच्छंद लड़ाई थी;
- (vi) क्या घटना अकस्मात् हुई थी या कोई पूर्व चिंतन था;
- (vii) क्या (पक्षकारों के मध्य) कोई पूर्व रंजिश थी या मृतक (अभियुक्त के लिए) अनजान व्यक्ति था;
- (viii) क्या कोई गंभीर या अचानक प्रकोपन था और यदि हाँ तो प्रकोपन के लिए कारण;
- (ix) क्या घटना आवेश जनित थी;
- (x) क्या जिस व्यक्ति ने चोटो कारित की है उसने असम्यक लाभ लिया है या अप्राकृतिक या क्रूर तरीके से कृत्य किया है;
- (xi) क्या अभियुक्त ने एक प्रहार किया है या कई प्रहार किये हैं आदि।

Bivash Chandra Debnath @ Bivash D & others v. State of West Bengal

Judgment dated 08.04.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 157 of 2011, reported in 2015 (2) Crimes 317 (SC)

249. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 302

EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 3 and 8

- (i) Motive – Where case is based on circumstantial evidence, motive becomes an important factor but that does not mean, in all cases of circumstantial evidence, if prosecution is unable to prove the motive, the prosecution must fail – Murders have

been committed without any pro-eminent motive – Mere fact that the prosecution has failed to translate the mental disposition of the accused into evidence, does not mean that no such mental condition existed in the mind of the accused.

- (ii) Theory of last seen – If a person, who is last found in the company of another is dead or missing, the person with whom he was last seen alive has to explain the circumstances under which he parted with the company – Accused has failed to discharge that onus – It is a strong incriminating circumstance against him.
- (iii) Case based on circumstantial evidence – The circumstances from which the conclusion of guilt is sought to be drawn must be fully proved beyond any reasonable doubt and such circumstances must be consistent and must form a complete chain unerringly pointing to the guilt of the accused.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धारा 302

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धाराएं 3 और 9

- (i) हेतुक – जहाँ मामला परिस्थिति जन्य साक्ष्य पर आधारित हो, हेतुक एक महत्वपूर्ण कारक होता है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी परिस्थिति जन्य साक्ष्य के मामलों में जहाँ अभियोजन हेतुक प्रमाणित करने में समर्थ नहीं होता है अभियोजन असफल ही होता है – हत्यायें बिना किसी पूर्व हेतुक के कारित की जाती है – केवल यह तथ्य कि अभियोजन अभियुक्त की मानसिक स्थिति को साक्ष्य से अनुवादित या स्थापित करने में असफल रहा है यह अर्थ नहीं है कि ऐसी मानसिक स्थिति अभियुक्त के मस्तिष्क में अस्तित्व में नहीं थी।
- (ii) अन्तिम बार साथ देखे जाने का सिद्धांत – यदि एक व्यक्ति अन्तिम बार दूसरे व्यक्ति के साथ पाया जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है या वह गायब हो जाता है तब जिस व्यक्ति के साथ वह अन्तिम बार जीवित साथ पाया गया था उसे यह स्पष्टीकरण देना ही होता है कि कैसे वह व्यक्ति उससे अलग हुआ – अभियुक्त इस प्रमाण भार को उन्मोचित करने में असफल रहा – अभियुक्त के विरुद्ध यह एक प्रबल अपराध में लिप्त करने वाली परिस्थिति है।
- (iii) परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामला – परिस्थितियाँ जिनके आधार पर अभियुक्त के दोषी होने का निष्कर्ष निकाला जाना है वे सभी युक्तियुक्त संदेह से परे प्रमाणित होना चाहिए परिस्थितियाँ निश्चित और एक पूर्ण श्रृंखला बनाती हो और अभियुक्त के दोषी होने को अचूक रूप से इंगित करती हो।

Kirti Pal and ors. v. State of West Bengal and ors.

Judgment dated 16.04.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 50 of 2014, reported in 2015 (3) Crimes 11 (SC)

Extract from the Judgment:

Referring to several earlier decisions of this Court in *Geejaganda Samaiah v. State of Karnataka* (2007)9 SCC 315 para 15 it was held as follows:

“15. Sir Alfred Wills in his admirable book *Wills' Circumstantial Evidence* (Chapter VI) lays down the following rules specially to be observed in the case of circumstantial evidence: (1) the facts alleged as the basis of any legal inference must be clearly proved and beyond reasonable doubt connected with the factum probandum; (2) the burden of proof is always on the party who asserts the existence of any fact, which infers legal accountability; (3) in all cases, whether of direct or circumstantial evidence the best evidence must be adduced which the nature of the case admits; (4) in order to justify the inference of guilt, the inculpatory facts must be incompatible with the innocence of the accused and incapable of explanation, upon any other reasonable hypothesis than that of his guilt; and (5) if there be any reasonable doubt of the guilt of the accused, he is entitled as of right to be acquitted.”

Same principle was reiterated in *Swamy Sharaddananda @ Murali Manohar Mishra v. State Karnataka*, (2007) 12 SCC 288, *Gagan Kanojia and anr. v. State of Punjab*, (2006) 13 SCC 516, *Mohd. Mannan @ Abdul Mannan v. State of Bihar*, 2011 (5-7) SBR 336 and *Inspector of Police, Tamil Nadu v. John David*, (2011) 5 SCC 509.

In *Vivek Kalra v. State of Rajasthan*, (2014) 12 SCC 439, it was observed thus:

“...where prosecution relies on circumstantial evidence only, motive is a relevant fact and can be taken into consideration Under Section 8 of the Indian Evidence Act 1872 but where the chain of other circumstances establishes beyond reasonable doubt that it is the accused and the accused alone who has committed the offence, and this is one such case, the Court cannot hold that in the absence of motive of the accused being established by the prosecution, the accused cannot be held guilty of the offence in *Ujjagar Singh v. State of Punjab*, (2007) 13 SCC 90, this Court observed:

“It is true that in a case relating to circumstantial evidence motive does assume great importance but to say that the absence of motive would dislodge the entire prosecution story is perhaps giving this one factor an importance which is not due and (to use the cliché) the motive is in the mind of the accused and can seldom be fathomed with any degree of accuracy.”

•

250. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 304-B

Dowry death – The prosecution should produce evidence to prove that soon before her death, the deceased was subjected to cruelty or harassment – There must always be proximate and live link between the effects of cruelty based on dowry demand and the concerned death – In absence of such type of evidence, conviction under section 304-B held, liable to be set aside – *Hira Lal & ors v. State (Govt. of NCT)*, AIR 2003 SC 2865 and seven other cases referred.

भारतीय दंड संहिता, 1860 – धारा 304-बी

दहेज मृत्यु – अभियोजन को यह प्रमाणित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहिए कि मृतक के साथ उसकी मृत्यु के ठीक पूर्व क्रूरता या उसे परेशान किया गया था – दहेज की मांग को लेकर की गई क्रूरता व मृत्यु के बीच सीधा और जीवित संबंध होना चाहिए – इस प्रकार की साक्ष्य के अभाव में धारा 304-बी, भा.दं.सं. में की गई दोषसिद्धि अपास्त होने के योग्य होना अभिनिर्धारित किया गया – हीरा लाल विरूद्ध स्टेट (गर्वमेन्ट ऑफ एन.सी.टी.), ए.आई. आर. 2003 एस.सी. 2865 और सात अन्य प्रकरण रेफर किये गये।

Major Singh & another v. State of Punjab

Judgment dated 08.04.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No.1145 of 2012, reported in 2015 CriLJ 2593 (SC) (There Judge Bench)

Extracts from the Judgment:

To attract conviction under Section 304-B, IPC, the prosecution should adduce evidence to show that “soon before her death”, the deceased was subjected to cruelty or harassment. There must always be proximate and live link between the effects of cruelty based on dowry demand and the concerned death. In the case of *Hira Lal & ors. v. State (Govt. of NCT) Delhi, (2003) 8 SCC 80*, in paragraph (9) it was observed as under :-

“9. A conjoint reading of Section 113-B of the Evidence Act and Section 304-B IPC shows that there must be material to show that soon before her death the victim was subjected to cruelty or harassment. The prosecution has to rule out the possibility of a natural or accidental death so as to bring it within the purview of “death occurring otherwise than in normal circumstances”. The expression “soon before” is very relevant where Section 113-B of the Evidence Act and Section 304-B IPC are pressed into service. The prosecution is obliged to show that soon before the occurrence there was cruelty or harassment and only in that case presumption operates. Evidence in that regard has to be led by the prosecution. “Soon before” is a relative term and it would depend upon the circumstances of each

case and no straitjacket formula can be laid down as to what would constitute a period of soon before the occurrence. It would be hazardous to indicate any fixed period, and that brings in the importance of a proximity test both for the proof of an offence of dowry death as well as for raising a presumption under Section 113-B of the Evidence Act. The expression "soon before her death" used in the substantive Section 304-B IPC and Section 113-B of the Evidence Act is present with the idea of proximity test. No definite period has been indicated and the expression "soon before" is not defined. A reference to the expression "soon before" used in Section 114 Illustration (a) of the Evidence Act is relevant. It lays down that a court may presume that a man who is in the possession of goods "soon after the theft, is either the thief or has received the goods knowing them to be stolen, unless he can account for their possession". The determination of the period which can come within the term "soon before" is left to be determined by the courts, depending upon facts and circumstances of each case. Suffice, however, to indicate that the expression "soon before" would normally imply that the interval should not be much between the cruelty or harassment concerned and the death in question. There must be existence of a proximate and live link between the effect of cruelty based on dowry demand and the death concerned. If the alleged incident of cruelty is remote in time and has become stale enough not to disturb the mental equilibrium of the woman concerned, it would be of no consequence."

Same principle was also expressed in *State of A.P. v. Raj Gopal Asawa & anr.*, AIR 2004 SC 1933, *Balwant Singh & anr. v. State of Punjab*, AIR 2005 SC 1504, *Kaliyaperumal & anr. v. State of Tamil Nadu*, AIR 2003 SC 3828, *Kamesh Panjiyar alias Kamlesh Panjiyar v. State of Bihar*, AIR 2005 SC 785, *Harjit Singh v. State of Punjab*, AIR 2006 SC 680, *Biswajit Halder alias Babu Halder & ors. v. State of West Bengal*, (2008) 1 SCC 202 and *Narayanamurthy v. State of Karnataka & anr.*, AIR 2008 SC 2377.

Applying these principles to the instant case, we find that there is no evidence as to the demand of dowry or cruelty and that deceased Karamjit Kaur was subjected to dowry harassment "soon before her death". Except the demand of scooter, there is nothing on record to substantiate the allegation of dowry demand. Assuming that there was demand of dowry, in our view, it can only be attributed to the husband—Jagsir Singh who in all probability could have demanded the same for his use. In the absence of any evidence that the deceased was treated with cruelty or harassment in connection with the demand of dowry "soon before her death" by the appellants, the conviction of the

appellants under Section 304-B IPC cannot be sustained. The trial court and the High Court have not analyzed the evidence in the light of the essential ingredients of Section 304-B IPC and the conviction of the appellants under Section 304-B IPC is liable to be set aside.

251. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 304-B

DOWRY PROHIBITION ACT, 1961 – Section 2

- (i) Definition of “dowry” can be broken into six parts:
- (a) Dowry must first consist of any property or valuable security. The word “any” is a word of width and would include within it property and valuable security of any kind whatsoever.
 - (b) Such property or security can be given or even agreed to be given. The actual giving of such property or security is not necessary.
 - (c) Such property or security can be given or agreed to be given either directly or indirectly.
 - (d) Such giving or agreeing to give can again be not only by one party to a marriage to the other but also by the parents of either party or by any other person to the either party of marriage or to any other person.
 - (e) Such giving or agreeing to give can be at any time. It can be at, before or at any time after the marriage. So it can be many years after a marriage is solemnized.
 - (f) Such giving or receiving must be in connection with the marriage of the parties.
- (ii) Any money or property or valuable security demanded by any of the persons mentioned in Section 2 of the Act, 1961, at or before or at any time after the marriage which is reasonably connected to the death of a married woman, would necessarily be in connection with or in relation to the marriage unless, the facts of a given case clearly and unequivocally point otherwise – *Appasaheb v. State of Maharashtra*, (2007) 9 SCC 721 and *Vipin Jaiswal v. State of A.P.*, (2013) 3 SCC 684 do not state the law correctly.
- (iii) Meaning of the words “soon before her death” – Days or months are not what is to be considered – What must be borne in mind is that the word “soon” does not mean “immediate” – Time-lags may differ from case to case – All that is necessary is that the demand for dowry should not be stale but should be the continuing cause for the death of the married woman under Section 304-B IPC – *Dinesh v. State of Haryana*, (2014) 12 SCC 532 is not a correct reflection of the law.

भारतीय दंड संहिता, 1860 – धारा 304–बी

दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 – धारा 2

(i) “दहेज” की परिभाषा को 6 भागों में बाटा जा सकता है:—

- (1) दहेज कोई संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति होना चाहिए। शब्द “कोई” एक विस्तृत शब्द है जिसमें किसी भी प्रकार की संपत्ति या और मूल्यवान प्रतिभूति शामिल होती है।
- (2) ऐसी संपत्ति या प्रतिभूति दी जा सकती हैं या देने की सहमति हो सकती हैं। ऐसी संपत्ति या प्रतिभूति वास्तव में दिया जाना आवश्यक नहीं है।
- (3) ऐसी संपत्ति या प्रतिभूति प्रत्यक्षतः या परोक्षतः दी जा सकती है या देने की सहमति हो सकती है।
- (4) ऐसा देना या देने की सहमति न केवल विवाह के एक पक्षकार द्वारा दूसरे को बल्कि उनमें से किसी पक्षकार के माता-पिता को भी या विवाह के किसी भी पक्षकार के किसी अन्य व्यक्ति को या किसी अन्य व्यक्ति को हो सकती है।
- (5) ऐसा देना या देने की सहमति किसी भी समय हो सकती है। यह विवाह के समय, विवाह के पूर्व या विवाह के पश्चात् किसी समय हो सकता है अतः यह विवाह सम्पन्न होने के कई वर्षों बाद भी हो सकता है।
- (6) ऐसा देना या देने की सहमति पक्षकारों के विवाह के संबंध में होना चाहिए।

(ii) कोई धन या संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति धारा 2 अधिनियम, 1961 में उल्लेखित किन्हीं व्यक्तियों द्वारा विवाह के समय या विवाह के पूर्व या विवाह के पश्चात् किसी समय हो सकती है जिसका कि विवाहित महिला की मृत्यु से युक्तियुक्त संबंध हो और जो कि विवाह के संबंध में होना चाहिए जब तक कि किसी दिये गये मामले में स्पष्ट रूप से और असंदिग्ध रूप से अन्यथा दर्शित न होता हो – अप्पा साहब विरुद्ध स्टेट ऑफ महाराष्ट्र, (2007) 9 एससीसी 721 और विपिन जायसवाल विरुद्ध स्टेट ऑफ ए.पी., (2013) 3 एससीसी 684 विधि की सही स्थिति नहीं बतलाते।

(iii) शब्द “उसकी मृत्यु के ठीक पूर्व” का अर्थ दिनों या महीनों के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए शब्द “ठीक पूर्व” का अर्थ “तत्काल पूर्व” नहीं होता है यह मस्तिष्क में रखना चाहिए – समय प्रकरण दर प्रकरण भिन्न हो सकता है – आवश्यक यह है कि दहेज की मांग पुरानी नहीं होना चाहिए बल्कि विवाहित महिला के मृत्यु का सतत कारण धारा 304–बी भा.दं.सं. के अधीन होना चाहिए – दिनेश विरुद्ध स्टेट ऑफ हरियाणा, (2014) 12 एससीसी 532 पैरा 15 विधि को सही रूप से प्रतिबिम्बित नहीं करता है।

Rajinder Singh v. State of Punjab

Judgment dated 26.02.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 2321 of 2009, reported in (2015) 6 SCC 477 (Three Judge Bench)

Note:- Followed in *M. Narayan v. State of Karnataka, (2015) 6 SCC 465*

Extracts from the Judgment:

Given that the statute with which we are dealing must be given a fair, pragmatic, and common sense interpretation so as to fulfill the object sought to be achieved by Parliament, we feel that the judgment in *Appasaheb v. State of Maharashtra, (2007) 9 SCC 721* case followed by the judgment of *Vipin Jaiswal v. State of A.P., (2013) 3 SCC 684* do not state the law correctly. We, therefore, declare that any money or property or valuable security demanded by any of the persons mentioned in Section 2 of the Dowry Prohibition Act, at or before or at any time after the marriage which is reasonably connected to the death of a married woman, would necessarily be in connection with or in relation to the marriage unless, the facts of a given case clearly and unequivocally point otherwise.

We endorse what has been said by these two decisions. Days or months are not what is to be seen. What must be borne in mind is that the word “soon” does not mean “immediate”. A fair and pragmatic construction keeping in mind the great social evil that has led to the enactment of Section 304-B would make it clear that the expression is a relative expression. Time lags may differ from case to case. All that is necessary is that the demand for dowry should not be stale but should be the continuing cause for the death of the married woman under Section 304-B.

At this stage, it is important to notice a recent judgment of this Court in *Dinesh v. State of Haryana, (2014) 12 SCC 532* in which the law was stated thus:

“The expression “soon before” is a relative term as held by this Court, which is required to be considered under the specific circumstances of each case and no straight jacket formula can be laid down by fixing any time of allotment. It can be said that the term “soon before” is synonyms with the term “immediately before”. The determination of the period which can come within term “soon before” is left to be determined by courts depending upon the facts and circumstances of each case”

We hasten to add that this is not a correct reflection of the law. “Soon before” is not synonymous with “immediately before”.

•

***252. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 306 and 498-A**

CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 216, 227 and 228

Framing of charge – The charges under sections 498-A and 306 IPC have been made out against five accused persons – Four accused persons filed revision petition against that order – High Court allowed the revision and discharged them from charge under section 306 IPC – Accused No. 5 (husband of the deceased) filed an application under section 216 Cr.P.C. and prayed for discharging him also – Same was rejected by the Trial Court – High Court upheld the order of Trial Court and held that once the charge has been framed by the Trial Court, it cannot discharge the accused, as under section 216 Cr.P.C. there is no such provision – Once the charge has been framed under section 228 Cr.P.C., the Trial Court has to proceed according to the procedure provided in the provisions – The process cannot be put to back gear to discharge the accused thereafter under section 227 Cr.P.C.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धाराएं 306 और 498-ए

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 216, 227 और 228

आरोप विरचित करना – धारा 498-ए और 306 भा.दं.सं. के आरोप 5 अभियुक्तगण के विरुद्ध बनना पाये गये – 4 अभियुक्तगण ने उक्त आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत की – उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण स्वीकार की और उन्हें (4 अभियुक्तगण को) धारा 306 भा.दं.सं. के आरोप से उन्मोचित किया – अभियुक्त क्रमांक 5 (मृतक के पति) ने धारा 216 दं.प्र.सं. के अधीन एक आवेदन प्रस्तुत किया और उसे उन्मोचित करने की प्रार्थना की विचारण न्यायालय ने उसे (आवेदन को) खारिज किया – उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के आदेश को कायम रखा और यह अभिनिर्धारित किया कि एक बार विचारण न्यायालय में आरोप विरचित किये जा चुके हैं तब धारा 216 दं.प्र.सं. के अधीन अभियुक्त को उन्मोचित नहीं कर सकती ऐसा कोई प्रावधान (भी) नहीं है – एक बार धारा 228 दं.प्र.सं. के अधीन आरोप विरचित किये जा चुके हो तब विचारण न्यायालय को प्रावधानों में बतलाई गयी प्रक्रिया के अनुसार अग्रसर होना होता है – धारा 227 दं.प्र.सं. के अधीन अभियुक्त को उन्मोचित करके प्रक्रिया को पीछे नहीं लाया जा सकता।

Naveen Gupta v. State of M.P.

Order dated 10.07.2014 passed by the High Court of M.P. in Criminal Revision No. 1010 of 2013, reported in ILR (2014) MP 2701

•

253. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 324 and 326

Where complainant and accused are close relatives, taking into account the compromise reached between them, reduction in sentence can be ordered.

भारतीय दंड संहिता, 1860 – धाराएं 324 और 326

जहाँ परिवादी और अभियुक्त निकट संबंधी हो वहाँ उनके बीच हुए समझौते के प्रकाश में दण्ड को कम करने का आदेश किया जा सकता है।

Nanda Gopalan v. State of Kerala

Judgment dated 24.04.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 714 of 2015, reported in 2015 (3) Crimes 55 (SC)

Extracts from the Judgment:

Learned counsel for the applicant submitted that though the offence under Section 326 could not be compounded, the compromise could be taken into account for reducing the sentence. He further submitted that since the weapon used in the present case was not of the nature specified under Sections 324 and 326, the charge could be altered to Sections 323 and 325. Offence under Sections 323 is compoundable and 325 is compoundable with the permission of the court. Learned counsel for the applicant has drawn the attention of the Court to the judgments in *Dasan v. State of Kerala and another, (2014) 12 SCC 666, Mathai v. State of Kerala, (2005) 3 SCC 260* and *Regina v. Bibi, 1980 (1) WLR 1193*.

Learned counsel for the State opposed the above submissions. According to him, the conviction under Sections 324 and 326 has been rightly recorded and no interference is called for by this Court.

While we have no difficulty in holding that taking into account the compromise between the parties particularly when they are close relatives, reduction in sentence can be ordered, we do not find any ground to interfere with the conviction of the appellant.

•

***254. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 399 and 402**

EVIDENCE ACT, 1872 – Section 3

Offence of making preparations and assembling to commit dacoity – Appreciation of evidence – Trial court convicted the accused persons for offence punishable under sections 399 and 402 IPC and sentenced each of them to R.I. for a period of seven years under section 399 IPC and a period of five years under section 402 IPC – High Court in appeal confirmed the sentence with modification of period of sentence under section 399 IPC – The Apex Court reversed the conviction and held that the High Court has erred in law by not taking note of the following facts apparent from the record:

- (i) It is strange that all the accused were wearing blue shirt, as if there was a uniform provided to them.
- (ii) It is difficult to believe that the accused persons did not try to run away as at the time of the noon they must have easily noticed from a considerable distance that some policemen were coming towards them.
- (iii) It is not natural that the six accused neither offered any resistance nor tried to cause any injury to the police personnel before they were arrested by the police.
- (iv) In daylight incident within the limits of City Police Station, there was no public or any independent witness of the arrest or alleged recovery of firearm.
- (v) The complainant has himself investigated the crime, so the credibility of the investigation is also doubtful in the present case, particularly for the reasons that except the police constables, there was no other witness to the incident.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धाराएं 399 और 402

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 3

डकैती करने की तैयारी करने और डकैती करने के प्रयोजन से एकत्रित होने के अपराध – साक्ष्य का मूल्यांकन – विचारण न्यायालय ने अभियुक्तगण को धारा 399 और 402 भा.दं.सं. के अपराध के लिए दोषी पाया और प्रत्येक की धारा 399 भा.दं.सं. में 7 वर्ष के कठोर कारावास और धारा 402 भा.दं.सं. में 5 वर्ष के कठोर कारावास से दण्डित किया – अपील में उच्च न्यायालय ने धारा 399 भा.दं.सं. में दण्ड की अवधि में कुछ परिवर्तन के साथ (विचारण न्यायालय के आदेश की) पुष्टि की – उच्चतम न्यायालय ने दोषसिद्धि को उलट दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर दर्शित निम्न तथ्यों पर ध्यान न देकर त्रुटि की है:-

- (i) यह आश्चर्यजनक है कि सभी अभियुक्त नीले रंग की कमीज पहने थे जैसे उन्हें गणवेश या यूनिफार्म दी गई है।
- (ii) यह विश्वास करना कठिन है कि अभियुक्तगण ने भागने का प्रयास नहीं किया जबकि दोपहर की घटना थी जिसमें उन्हें यह आसानी से पता लग जाना चाहिए कि काफी दूरी से कुछ पुलिसकर्मी उनकी ओर आ रहे थे।
- (iii) यह स्वाभाविक नहीं है कि 6 अभियुक्तों ने जब उन्हें गिरफ्तार किया जा रहा था तब कोई प्रतिरोध नहीं किया और न ही पुलिस के किसी व्यक्ति को उपहति कारित करने का प्रयास किया।
- (iv) दिन के समय की घटना जो सिटी पुलिस स्टेशन की सीमा में हुई हो और लोक या कोई स्वतंत्र गवाह गिरफ्तारी या अभिकथित फायर आर्म की जप्ती का न हो।
- (v) परिवादी ने स्वयं अपराध का अनुसंधान किया अतः इस मामले में अनुसंधान की विश्वसनीयता भी संदेहास्पद है, विशेष कर इस कारण से कि पुलिस सिपाहियों के अलावा घटना का कोई अन्य साक्षी नहीं है।

Jasbir Singh @ Javri @ Jabbar Singh v. State of Haryana
Judgment dated 06.04.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 554 of 2015, reported in (2015) 5 SCC 762

255. MOTOR VEHICLES ACT, 1988 – Section 2 (30)

Whether it is the duty of financier bank to renew the insurance policy of the vehicle from time to time, which was subject-matter of an agreement of hypothecation and also in possession of the owner? Held, No – The liability of the said bank to get the vehicle insured is only till the vehicle comes out on the road.

मोटर यान अधिनियम, 1988 – धारा 2 (30)

क्या यह वित्तदाता या फाइनेंसर बैंक का कर्तव्य है कि वाहन की बीमा पालिसी का समय – समय पर नवीनीकरण करावे, जो वाहन हायपोथिकेशन अनुबंध का विषय है और स्वामी के आधिपत्य में था ? अभिनिर्धारित किया गया, नहीं – ऐसी बैंक का वाहन को बीमित करवाने का दायित्व वाहन के सड़क पर (शोरूम से निकालकर) आने तक होता है।

Central Bank of India v. Jagbir Singh

Judgment dated 16.04.2015 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 3645 of 2015, reported in 2015 ACJ 1513 (SC)

Extracts from the Judgment:

A three-Judge Bench of this court, in *HDFC Bank Ltd. v. Reshma, 2015 ACJ 1 (SC)*, has further explained the law relating to liability of the creditor bank, and it has been held that the liability of such bank to get the vehicle insured is only till the vehicle comes out on the road. In other words, the creditor bank is not liable to get renewed the insurance policy on behalf of the owner of the vehicle from time to time. paras 23, 24 and relevant part of para 25 of that judgment are reproduced as under:

“(23) In the present case, as the facts have been unfurled, the appellant bank had financed the owner for purchase of the vehicle and the owner had entered into a hypothecation agreement with the bank. Borrower had the initial obligation to insure the vehicle, but without insurance he plied the vehicle on the road and the accident took place. Had the vehicle been insured, the insurance company would have been liable and not the owner. There is no cavil over the fact that the vehicle was subject of an agreement of hypothecation and was in possession and control under the respondent No. 2. The High Court has proceeded both in the main judgment as well as in the review that the financier steps into the shoes of the owner. Reliance placed on *Mohan Benefit Pvt. Ltd. v. Kachraji Raymalji, 1997 ACJ*

1438 (SC), in our considered opinion, was inappropriate because in the instant case all the documents were filed by the bank. In the said case, two-Judge Bench of this court had doubted the relationship between the appellant and the respondent therein from the hire-purchase agreement. Be that as it may, the said case rested on its own facts. In the decision in *Rajasthan State Road Trans. Corpn. v. Kailash Nathe Kothari, 1997 ACJ 1148 (SC)*, the court fastened the liability on the Corporation regard being had to the definition of the 'owner' who was in control and possession of the vehicle. Similar to the effect is the judgement in *National Insurance Co. Ltd. v. Deepa Devi, 2008 ACJ 705 (SC)*. Be it stated, in the said case the court ruled that the State shall be liable to pay the amount of compensation to the claimant and not the registered owner of the vehicle and insurance company. In the case of *Godavari Finance Company v. Degala Satyanarayamma, 2008 ACJ 1612 (SC)*, the learned Judges distinguished the ratio in *Deepa Devi* (supra) on the ground that it hinged on its special facts and fastened the liability on the insurer. In *U.P. State Road Trans. Corpn. v. Kulsum, 2011 ACJ 2145 (SC)*, the principle stated in *Kailash Nath Kothari* (supra) was distinguished and taking note of the fact that at the relevant time, the vehicle in question was insured with it and the policy was very much in force and hence, the insurer was liable to indemnify the owner.

(24) On a careful analysis of the principles stated in the foregoing cases, it is found that there is a common thread that the person in possession of the vehicle under the hypothecation agreement has been treated as the owner. Needless to emphasise, if the vehicle is insured, the insurer is bound to indemnify unless there is violation of the terms of the policy under which the insurer can seek exoneration.

(25) In *Purnya Kala Devi v. State of Assam, 2014 ACJ 1269 (SC)*, a three-Judge Bench has categorically held that the person in control and possession of the vehicle under an agreement of hypothecation should be construed as the owner and not as the registered owner and thereafter the court has adverted to the legislative intention, and ruled that the registered owner of the vehicle should not be held liable if the vehicle is not in his possession and control..."

•

256. MOTOR VEHICLES ACT, 1988 – Section 166

Assessment of compensation in death case – Deceased aged 32, was working in an Indian restaurant in Germany and according to claimants, he earned ` 62,975/- p.m. – Tribunal awarded ` 2,00,000/- – High Court assessed his income at ` 8,333/- p.m. and awarded ` 17,10,000/- – How to estimate income of a cook, who had worked in an Indian restaurant in Germany (or any other foreign country) ? Tribunal may consider that how much a cook of similar nature as the deceased would have earned in India in the year of 2006 (or at the time of his death) – The Apex Court ascertained the income of the deceased at the time of his death at ` 15,000/- p.m. and awarded compensation of a total amount of ` 29,17,000/-.

मोटर यान अधिनियम, 1988 – धारा 166

मृत्यु प्रकरण में प्रतिकर निर्धारण – मृतक 32 वर्ष उम्र का जर्मनी में भारतीय रेस्टोरेंट में कार्य करता था, दावेदारों के अनुसार ` 62,975/- प्रतिमाह कमाता था – अधिकरण ने ` 2,00,000/- अवार्ड किए – उच्च न्यायालय ने उसकी आमदानी ` 8,333/- प्रतिमाह निर्धारित की और ` 17,10,000/- अवार्ड किए – एक रसोईये की आमदनी का अनुमान, कैसे लगाया जाये जो जर्मनी में (या किसी अन्य देश में) भारतीय रेस्टोरेंट में कार्य करता था – अधिकरण यह विचार कर सकती है कि मृतक के समान ही कार्य करने वाला एक रसोईया वर्ष 2006 में (या उसकी मृत्यु के समय) भारत में कितना कमा लेता होगा ? – उच्चतम न्यायालय ने मृतक के आमदनी उसकी मृत्यु के समय ` 15,000/- प्रतिमाह निश्चित की और ` 29,17,000/- अवार्ड किए।

Chanderi Devi and anr. v. Jaspal Singh and ors.

Judgment dated 31.03.2015 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 3238 of 2015, reported in 2015 ACJ 1612 (SC)

Extracts from the Judgment:

The courts below have considered the evidence produced on record by the appellants, particularly the passport, salary certificate, income-tax certificates and whether or not the deceased was employed in Germany at the time of the accident to ascertain the annual income of the deceased at the time of his death and the courts below found that the same cannot be assessed on the basis of the documents referred to above. The High Court found it to be just and reasonable to take the income of the deceased at the time of his death at ` 8,333/- per month, which in our considered view is definitely on the lower side keeping in view that the deceased was employed as a cook in an Indian restaurant in Germany. At the same time, to consider the income of the deceased at ` 62,975/- per month (i.e. 1,145 Euros) as contended by the appellants to calculate the loss of dependency of the appellants would definitely be on the higher side. Hence, on considering the facts, circumstances of the case and plausibly estimating as to how much a cook of similar nature as the deceased would have earned in India in the year 2006, we are of the view that it would be

just and reasonable for us to ascertain the income of the deceased at the time of his death at ` 15,000/- per month.

•
257. MOTOR VEHICLES ACT, 1988 – Section 166

Assessment of compensation in injury case – Injured aged 44 years – No medical evidence of permanent disability – Whole family was dependent upon him for livelihood during the period when he was bed-ridden – Tribunal awarded ` 15,97,367/- and High Court enhanced it to a lumpsum of ` 1,00,000/-.

मोटर यान अधिनियम, 1988 – धारा 166

चोट के प्रकरण में प्रतिकर निर्धारण – आहत 44 वर्ष का, स्थायी अपंगाता की मेडिकल साक्ष्य नहीं – किन्तु उसका पूरा परिवार उस पर जीवनयापन के लिए निर्भर था जिस दौरान वह बिस्तर पर (चोटो के कारण) था – अधिकरण ने ` 15,97,367/- अवार्ड दिया, उच्च न्यायालय ने एक मुश्त ` 1,00,000/- की वृद्धि की।

United India Insurance Co. Ltd. v. Veereshwar Singh and others
Order dated 07.04.2015 passed by the High Court of M.P. in Misc. Appeal No. 1717 of 2009, reported in 2015 (3) MPLJ 117

Extracts from the Order:

So far as the claim for loss of earning capacity, the Tribunal has dealt with the matter vividly and has found no cogent evidence has been brought on record. The accident is of the year 2006 and there is no medical evidence that the claimant sustained permanent attributable disability. As such, in the opinion of this Court, the Tribunal has given valid and cogent findings. Accordingly, the findings need not be upset in any manner in that context.

However, having gone through the impugned award, it is found that the Tribunal has considered all the facts while passing the impugned award, yet looking to the fact that injured/claimant was aged 44 years, and his whole family was dependent upon him for livelihood during the period he was bedridden, there was to some extent loss of earning capacity and looking to the other attending circumstances, in the opinion of this Court, the amount awarded by the Tribunal deserves to be enhanced. Thus, the claimant/appellant is entitled for lump sum enhancement to the tune of ` 1,00,000/- (Rupees one lac only).

•
258. MOTOR VEHICLES ACT, 1988 – Sections 166 and 168

- (i) Assessment of compensation in death case – Choice of multiplier – Deceased was bachelor – Claimants are parents – For choice of multiplier, whose age is material? Held, the age of deceased should be taken into consideration.**
- (ii) Assessment of compensation in death case – Personal expenses of a deceased-bachelor – Claimants are parents – It may be 50% of his annual income but in exceptional cases, the**

Tribunal may consider the facts and circumstances of individual case.

मोटर यान अधिनियम, 1988 – धाराएं 166 और 168

- (i) मृत्यु प्रकरण में प्रतिकर का निर्धारण – गुणक का चयन – मृतक अविवाहित था – दावेदार माता पिता हैं – गुणक के चयन में किसकी उम्र तात्विक है? अभिनिर्धारित किया गया, मृतक की उम्र विचार में ली जायेगी।
- (ii) मृत्यु प्रकरण में प्रतिकर का निर्धारण – अविवाहित मृतक का व्यक्तिगत निर्वाह खर्च – दावेदार माता पिता हैं – यह (जीवन निर्वाह खर्च) मृतक की वार्षिक आय का 50% होगा किंतु अधिकरण अपवाद स्वरूप प्रकरणों में उस प्रकरण विशेष के तथ्यों और परिस्थितियों को विचार में ले सकते हैं।

Munna Lal Jain and another v. Vipin Kumar Sharma and others

Judgment dated 15.05.2015 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 4497 of 2015, reported in (2015) 6 SCC 347 (Three Judge Bench)

Note:- Readers are requested to go through *New India Assurance Company Ltd v. Smt Shanta Pathak, AIR 2007 SC 2649 (Three Judge Bench)* which is not considered in this judgment. Also see an article on this point published in Part I of this issue.

Extracts from the Judgment:

The deduction ordinarily in the case of a bachelor at 50 % was approved recently by a three-Judge Bench decision in *Reshma Kumari and others v. Madan Mohan and another, (2013) 9 SCC 65*, holding that the standard fixed in *Sarla Verma v. DTC, (2009) 6 SCC 121* on the aspect of deduction for personal and living expenses ... “must ordinarily be followed unless a case for departure in the circumstances noted in the preceding paragraph is made out”. Preceding paragraph 41 reads as follows:

“41. The above does provide guidance for the appropriate deduction for personal and living expenses. One must bear in mind that the proportion of a man’s net earnings that he saves or spends exclusively for the maintenance of others does not form part of his living expenses but what he spends exclusively on himself does. The percentage of deduction on account of personal and living expenses may vary with reference to the number of dependent members in the family and the personal living expenses of the deceased need not exactly correspond to the number of dependants.”

The remaining question is only on multiplier. The High Court following *Santosh Devi v. National Insurance Co. Ltd., (2012) 6 SCC 421*, has taken 13 as the multiplier. Whether the multiplier should depend on the age of the dependants or that of the deceased, has been hanging fire for sometime; but that has been given a quietus by another three-Judge Bench decision in *Reshma Kumari v.*

Madan Mohan, (2013) 9 SCC 65. It was held that the multiplier is to be used with reference to the age of the deceased. One reason appears to be that there is certainty with regard to the age of the deceased but as far as that of dependants is concerned, there will always be room for dispute as to whether the age of the eldest or youngest or even the average, etc., is to be taken. To quote:

“36. In *Sarla Verma*, this Court has endeavoured to simplify the otherwise complex exercise of assessment of loss of dependency and determination of compensation in a claim made under Section 166. It has been rightly stated in *Sarla Verma* that the claimants in case of death claim for the purposes of compensation must establish (a) age of the deceased; (b) income of the deceased; and (c) the number of dependants. To arrive at the loss of dependency, the Tribunal must consider (i) additions/deductions to be made for arriving at the income; (ii) the deductions to be made towards the personal living expenses of the deceased; and (iii) the multiplier to be applied with reference to the age of the deceased. We do not think it is necessary for us to revisit the law on the point as we are in full agreement with the view in *Sarla Verma*.”

In *Sarla Verma* (supra), at paragraph-19, a two-Judge Bench dealt with this aspect in Step 2. To quote:

“19. Step 2 (Ascertaining the multiplier)

Having regard to the age of the deceased and period of active career, the appropriate multiplier should be selected. This does not mean ascertaining the number of years he would have lived or worked but for the accident. Having regard to several imponderables in life and economic factors, a table of multipliers with reference to the age has been identified by this Court. The multiplier should be chosen from the said table with reference to the age of the deceased.”

***259. MOTOR VEHICLES ACT, 1988 – Sections 166 and 168**

Composite negligence – Liability of joint tort-feasors – Whether a claimant can recover entire compensation from one of the joint tort-feasors particularly, when the composite negligence of the drivers of both trailer-truck and bus is in the ratio of 2/3rd and 1/3rd respectively?

Held:

- (i) In the case of composite negligence, plaintiff/claimant is entitled to sue both or any one of the joint tortfeasors and to recover the entire compensation as liability of joint tortfeasors is joint and several.**

- (ii) In the case of composite negligence, apportionment of compensation between two tortfeasors *vis-a-vis* the plaintiff/claimant is not permissible. He can recover at his option whole damages from any of them.
- (iii) In case all the joint tortfeasors have been impleaded and evidence is sufficient, it is open to the court/tribunal to determine *inter se* extent of composite negligence of the drivers. However, determination of the extent of negligence between the joint tortfeasors is only for the purpose of their inter se liability so that one may recover the sum from the other after making whole of payment to the plaintiff/claimant to the extent it has satisfied the liability of the other. In case both of them have been impleaded and the apportionment/extent of their negligence has been determined by the court/tribunal, in main case one joint tortfeasor can recover the amount from the other in the execution proceedings.
- (iv) It would not be appropriate for the court/tribunal to determine the extent of composite negligence of the drivers of two vehicles in the absence of impleadment of other joint tortfeasors. In such a case, impleaded joint tortfeasor should be left, in case he so desires, to sue the other joint tortfeasor in independent proceedings after passing of the decree or award.

मोटर यान अधिनियम, 1988 – धाराएं 166 और 168

सम्मिश्र उपेक्षा – संयुक्त दोषकर्त्ताओं का दायित्व – क्या एक दावेदार पूरा प्रतिकर संयुक्त दोषकर्त्ताओं में से किसी एक दोषकर्त्ता से वसूल कर सकता है विशेषकर जहाँ दुर्घटना में ट्रेलर ट्रक व बस के चालकों की सम्मिश्र उपेक्षा 2/3 और 1/3 की सीमा तक पाई गई है ? निर्णय चरण 18 में विधि समझाई गई।

Khenyei v. New India Assurance Co. Ltd. and others

Judgment dated 07.05.2015 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 4244 of 2015, reported in 2015 ACJ 1441(SC) (Three Judge Bench)

260. N.D.P.S. ACT, 1985 – Sections 15, 35, 50 and 54

- (i) Conscious possession – How to be judged? When truck was stopped by the police, accused persons ran away from the spot – They have not taken the plea of taking any lift in the truck – Their presence in the truck has been proved by the prosecution – Huge quantity (110 bags of poppy husk weighing 4180 kg) has been carried in the truck – Plea of defence is that they were only moving in the truck and had no knowledge of the contents of bags – Conscious possession held proved – Plea of defence rejected.

- (ii) Search and seizure from truck – Section 50 of the Act is not applicable.
- (iii) Witnesses have identified the accused in the torch light – They had also seen them running away – Nothing has been elicited in their cross-examination to discern the testimony of witnesses – Non-holding of T.I. parade held, insignificant.

एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 – धाराएं 15, 35, 50 और 54

- (i) जागृत आधिपत्य – कैसे निर्णित किया जावे ? जब पुलिस द्वारा ट्रक रोका गया – अभियुक्तगण घटना स्थल से भाग गये उन्होंने ट्रक में लिफ्ट ली थी ऐसा भी उनका बचाव नहीं है – अभियोजन द्वारा उनकी ट्रक में उपस्थिति प्रमाणित की है – भारी मात्रा (110 थैले पॉपी हक्स वजन 4,180 कि.ग्रा) ट्रक में ले जाया जा रहा था – प्रतिरक्षा का बचाव यह है कि अभियुक्तगण केवल ट्रक में जा रहे थे और उन्हें थैलों में रखी सामग्री का ज्ञान नहीं था, – जागृत कब्जा प्रमाणित होना अभिनिर्धारित किया गया – प्रतिरक्षा का बचाव खारीज किया गया।
- (ii) ट्रक से तलाशी और जप्ती – आधिनियम की धारा 50 लागू नहीं होती है।
- (iii) गवाहों ने अभियुक्त को टार्च की रोशनी में पहचाना था – उन्होंने उन्हें (अभियुक्तगण को) भागते हुए भी देखा था – गवाहों के प्रतिपरीक्षण में ऐसा कुछ नहीं लाया गया था, जिससे उनके कथन पर अविश्वास किया जाए – पहचान परेड़ का संचालन न करवाना महत्वहीन माना गया।

Kulwinder Singh and another v. State of Punjab

Judgment dated 05.05.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 681 of 2011, reported in (2015) 6 SCC 674

Extracts from the Judgment:

In *Matru v. State of U.P.*, (1971) 2 SCC 75, it has been held that the identification test does not constitute substantive evidence and it is primarily meant for the purpose of helping the investigating agency with an assurance that their progress with the investigation of an offence is proceeding on the right lines.

In *Santok Singh v. Izhar Hussain*, (1973) 2 SCC 406, it has been observed that the identification can only be used as corroborative of the statement in Court.

In *Malkhansingh v. State of M.P.*, (2003) 5 SCC 746, it has been held thus:

“The identification parades belong to the stage of investigation, and there is no provision in the Code of Criminal Procedure which obliges the investigating agency to hold, or confers a right upon the accused to claim a test identification parade. They do not constitute substantive evidence and these parades are essentially governed by section 162 of the Code of Criminal Procedure. Failure to

hold a test identification parade would not make inadmissible the evidence of identification in Court. The weight to be attached to such identification should be a matter for the Courts of fact.”

In this context, reference to a passage from *Visveswaran v. State, (2003) 6 SCC 73* would be apt. It is as follows:

“.... The identification of the accused either in test identification parade or in Court is not a sine qua non in every case if from the circumstances the guilt is otherwise established. Many a time, crimes are committed under the cover of darkness when none is able to identify the accused. The commission of a crime can be proved also by circumstantial evidence.”

In the case at hand, as the witnesses have identified the appellant-accused in the Court and except giving a bald suggestion that they have not seen the accused persons, there is nothing in the cross examination we are disposed to accept the identification in Court. Hence, the submission canvassed by the learned counsel for the appellants on this score pales into insignificance.

The next ground of assail pertains to factum of conscious possession. The submission of the learned counsel for the appellants is that they were only moving in the truck and had no knowledge what the bags contained. As the evidence on record would show, two of the accused persons were sitting by the side of the driver and the rest of the accused persons were sitting on the body of the truck. 110 bags of poppy husk weighing 4180 kg in the truck. At the instance of the police when the truck was stopped, had the appellant-accused no knowledge about the contents of the bags, they would not have run away from the spot. That apart they absconded for few days from their village. They have not taken the plea that they were taking any lift in the truck and their presence in the truck has been proven by the prosecution. It is not a small bag lying in the corner of the truck that the appellant-accused can advance the plea that they were not aware of it. In the instant case there were 110 bags of poppy husk being carried in the truck. Their presence which has been proven, establishes their control over the bags. The circumstances clearly establish that they were aware of the poppy husk inside the bags and in such a situation, it is difficult to accept that they were not in conscious possession of the said articles.

The next contention that has been raised by the learned counsel for the appellants relates to non-compliance with section 50 of the NDPS Act. It is undisputed that the bags containing poppy husk were seized from the truck. Thus, it is not a case of personal search of a person. In *Megh Singh v. State of Punjab, (2003) 8 SCC 666*, it has been held that section 50 only applies in case of personal search of a person but it is not extended to a search of a vehicle or a container, or a bag or premises.

•

261. N.D.P.S. ACT, 1985 – Sections 18, 42, 43 and 52-A

EVIDENCE ACT, 1872 – Section 27

- (i) **Accused was in police custody for a particular offence – During interrogation, he led to the discovery in connection with another offence – Whether it is necessary that he should be in police custody in connection with the same offence? Held, No.**
- (ii) **Search made in a public place i.e. beneath a bridge of a public road, so the question of compliance of section 42 (1), (2) does not arise.**
- (iii) **Delay in sending seized articles for chemical examination – The FSL report states that sealed packet was received with seal intact – There was no evidence of its tampering – Delay of 40 days, held, immaterial.**

एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 – धाराएं 18, 42, 43 और 52

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 27

- (i) **अभियुक्त एक विशिष्ट अपराध में पुलिस अभिरक्षा में था – पूछताछ में उसने अन्य अपराध से संबंधित (नये तथ्यों का पता लगाने) संबंधी जानकारी दी – क्या यह आवश्यक है की उसे उसी अपराध के संबंध में पुलिस अभिरक्षा में होना चाहिये ? अभिनिर्धारित किया गया, नहीं।**
- (ii) **तलाशी लोक स्थान अर्थात पुलिया के नीचे एक आम सड़क पर की गई, धारा 42 (1), (2) के अनुपालन का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है।**
- (iii) **बरामद सामग्रियों को रासायनिक परीक्षण के लिये भेजने में देरी – एफ.एस.एल. प्रतिवेदन में यह उल्लेख है की सीलबंद पैकेट प्राप्त हुये सील साबूत (अक्षुण्ण) पाई गई – उसके साथ (जब्त सामग्री के साथ) छोड़छाड़ करने के बारे में कोई साक्ष्य नहीं थी – अभिनिर्धारित किया गया 40 दिन का विलंब अतात्विक है।**

Mohan Lal v. State of Rajasthan

Judgment dated 17.04.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1393 of 2010, reported in AIR 2015 SC 2098

Extracts from the Judgment:

The learned counsel for the appellant has also contended that the appellant was in custody in connection with FIR no. 95 of 1985 and while in custody, he suffered a disclosure statement and led to discovery of the contraband articles. Submission of the learned counsel for the appellant is that the said statement cannot be taken aid of for the purpose of discovery in connection with the present case. It is demonstrable from the factual matrix that in connection with FIR No. 95 of 1985, he was arrested and while he was interrogated, he led to discovery in connection with the stolen contraband articles from the malkhana which was the matter of investigation in FIR no. 96 of 1985. There is no shadow of doubt that the accused-appellant was in police custody. Section 27 of the Indian Evidence Act, 1872 provides that when any fact is deposed to as discovery in

consequence of the information received from a person accused of any offence in custody of a police officer, so much of such information whether it amounts to confession or not as relates distinctly to the fact thereby discovered may be proved. It is well settled in law that the components or portion which was the immediate cause of the discovery could be acceptable legal evidence [See *A.K. Subraman and others v. Union of India and others*, AIR 1976 SC 483]. The words employed in Section 27 does not restrict that the accused must be arrested in connection with the same offence. In fact, the emphasis is on receipt of information from a person accused of any offence. Therefore, when the accused-appellant was already in custody in connection with FIR no. 95 of 1985 and he led to the discovery of the contraband articles, the plea that it was not done in connection with FIR no. 96 of 1985, is absolutely unsustainable. Be it stated here, that the recovery has been proven to the hilt. The accused, accompanied by the witnesses, had gone beneath the bridge built between Gupal Sariya and Madiyai and he himself had removed the big stone and dug the earth and took out the packet which was bound in a long cloth from which a packet was discovered and the said packet contained 10 kg and 200 gms of opium. The learned trial Judge as well as the High Court has, by cogent and coherent reasons, accepted the recovery. On a scrutiny of the same, we also find that there is nothing on record to differ with the factum of recovery of the contraband articles.

Another submission that has been advanced by the learned counsel for the appellant is that the seized articles were not sent immediately for chemical examination. The FSL report, Ex. P-14, dated 15.9.1986 states that a letter along with a sealed packet was received with seals intact. The said report further mentions that packet was covered in white cloth and on opening of the packet, the examiner found a cylindrical tin and the substance on examination was found to be an opium having 1.44% morphine. The seal being intact, the description of the case number and the impression of seal having been fixed on memo of recovery, there is no reason or justification to discard the prosecution case on the ground of delay on this score. In *Hardip Singh v. State of Punjab*, (2008) 8 SCC 557, a two-Judge Bench while dealing with the question of delay in sending the samples of opium to the FSL, opined that it was of no consequence, for the fact of the recovery of the said sample from the possession of the appellant had been proven and established by cogent and reliable evidence and that apart, it had also come in evidence that till the date of parcels of samples were received by the Chemical Examiner, the seal put on that parcel was intact. Under these circumstances, the Court ruled that the said facts clearly proves and establishes that there was no tampering with the aforesaid seal in the sample at any stage and the sample received by the analyst for chemical examination contained the same opium which was recovered from the possession of the appellant. The plea that there was 40 days delay was immaterial and would not dent the prosecution case.

•

***262. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Section 138**

Non-signatory of a cheque has been made an accused in complaint under section 138 of N.I. Act – According to complainant, the cheque was drawn by co-accused Smt Lata on the saying of another accused, who is her husband and also friend of the complainant – If such statement is taken on face value, it does not make out a case of quashment of complaint rather it seems to be a case of appreciation of evidence which could be done by the trial Court at the proper stage – *Aparna A. Shah v. Sheth Developers Private Limited and another*, (2013) 8 SCC 71 referred.

पराक्रम्य लिखित अधिनियम, 1881 – धारा 138

धारा 138 एन.आई. एक्ट के परिवाद में चैक पर हस्ताक्षर न करने वाले को एक अभियुक्त बनाया गया – परिवादी के अनुसार चैक सह-अभियुक्त लता ने अन्य अभियुक्त के कहने पर जारी किया था, जो कि उसका पति था व परिवादी का मित्र भी था – यदि इस कथन को इसी रूप में लिया जाता है तो परिवाद को अभिखण्डित करने का मामला नहीं बनता है बल्कि यह एक साक्ष्य के मूल्यांकन का विषय है जो विचारण न्यायालय द्वारा उचित प्रक्रम पर किया जायेगा – अर्पणा ए. शाह विरुद्ध सेठ डब्लुपर्स प्राईवेट लिमिटेड (2013) 8 एस.सी.सी. 71 रेफर किया गया।

Nitin Khandelwal v. Majul & others

Order dated 20.11.2014 passed by the High Court of M.P. in M.Cr.C. No. 5245 of 2014, reported in 2015 (3) MPLJ 354

263. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Section 138

CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 394

Appeal against acquittal – Effect of death of appellant during pendency of appeal – The maxim “*actio personalis moritur cum persona*” is not applicable to criminal prosecution – The death of complainant cannot *ipso facto* bring the termination of the proceeding – Applicant produced a registered Will, which was executed in his favour by the appellant – It is sufficient in a criminal case to infer that he is the legal representative of the appellant.

पराक्रम्य लिखित अधिनियम, 1881 – धारा 138

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 394

दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील – अपील लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी की मृत्यु का प्रभाव – सुक्ति “एक्टियो पर्सोनालिस मोरिटयूर कम परसोना” दांडिक अभियोजन पर लागू नहीं होती है – परिवादी की मृत्यु से कार्यवाही स्वतः समाप्त नहीं हो जाती – अपीलार्थी की मृत्यु हो गई – आवेदक ने एक पंजीकृत वसीयतनामा प्रस्तुत किया जो उसके पक्ष में अपीलार्थी द्वारा निष्पादित किया गया (था) – दांडिक प्रकरण में यह अनुमान निकालने के लिए पर्याप्त है कि वह अपीलार्थी का विधिक प्रतिनिधि है।

Rajmal Agarwal v. Dinesh Sahu

Order dated 05.02.2015 passed by the High Court of M.P. in Criminal Appeal No. 254 of 2012 reported in 2015 (3) MPLJ 69

Extracts from the Order:

In *Helen C. Pinheiro v. M/s Kamaxi Steel Products*, reported in 200 Cri.LJ 1622, it is held that “the Magistrate is competent to proceed with the complaint even where complainant died during pendency of complaint”.

In *Assem Shabanli Merchant v. Brij Mehra*, reported in (2005) 11 SCC 412, it is held that “in prosecution for offence under Section 138 of the Negotiable Instruments Act, on the death of the complainant, the Court would allow his son to conduct the prosecution and appoint a Counsel of his choice”.

264. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Section 138 (b)

Constructive service of demand notice – What it may amount to? – Registered demand notice was returned with an endorsement that “Addressee left the place” – Summons of private complaint came back with a different endorsement that “petitioner went outside” – After issuance of a bailable warrant, he appeared before the Court – In complaint, it was alleged that the accused deliberately evaded receipt of demand notice – Deliberate evasion of receipt of registered demand notice would amount to constructive service of demand notice.

परक्राम्य लिखित अधिनियम, 1881 – धारा 138 (बी)

मांग सूचनापत्र की आन्वयिक तामील – किसके समान है ? – पंजीकृत मांग सूचना पत्र “पाने वाले स्थान छोड़ गया है” के पृष्ठांकन से लौटा था – निजी परिवाद का समन इस भिन्न पृष्ठांकन के साथ वापस आया कि “याची बाहर गया है” – जमानती वारंट जारी करने के बाद वह न्यायालय में उपस्थित हो गया – परिवाद में यह अभिकथन था कि अभियुक्त मांग सूचना पत्र को जानबूझकर टाल रहा है – पंजिकृत मांग सूचनापत्र को जानबूझकर टालना मांग सूचना पत्र की आन्वयिक तामील के समान होगा।

Vijay Kumar Gupta v. Pankaj Sharma

Order dated 08.04.2015 passed by the High Court of M.P. in M.Cr.C. No. 1079 of 2015, reported in 2015 (2) JLJ 289

Extracts from the Order:

After taking into consideration the facts of the case and on perusal of the registered demand notice, it is clear that notice was returned with an endorsement that “Addressee left the place” in first turn but ultimately when notice of private complaint was issued by the trial court, it came back with a different endorsement that “petitioner went outside”. When bailable warrant was issued, petitioner appeared before the Court. In para 5 of the complaint, it was

stated that the accused deliberately evaded receipt of registered demand notice, it is therefore only a deliberate avoidance of the notice on the part of the accused to escape from the liability which cannot be entertained. So, the things are very clear and the Courts below have been committed any illegality to understand the purport of a valid notice as contemplated under section 138(b) of the Act.

•

265. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Sections 138 and 139

Neither cheque nor signature of the accused has been disputed by the defence – The presumption u/s 139 of the N.I. Act would operate – Burden was on the accused to disprove the cheque or the existence of any legally recoverable debt or liability – He failed to rebut the presumption and story of misuse of old cheque by the complainant – Mere printed date as “—/—/199—” on the cheque by itself, in absence of any other evidence, is not sufficient to hold that the cheque was issued in 1999.

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 – धाराएं 138 और 139

न तो चेक न उस पर अभियुक्त के हस्ताक्षर को बचाव द्वारा विवादित किया गया है – धारा 139 एन.आई.एक्ट की उपधारणा लागू होगी – यह प्रमाण भार अभियुक्त पर है कि विधिक रूप से वसूली योग्य ऋण या दायित्व का अस्तित्व में न होना प्रमाणित करे – वह उपधारणा को खंडित करने और परिवादी द्वारा पुराने चेक का दुरुपयोग करने की कहानी खंडित करने में असफल रहा – केवल चेक पर “—/—/199—” तारीख प्रिन्ट होना किसी अन्य साक्ष्य के अभाव में यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता कि चेक वर्ष 1999 में जारी किया गया।

T.Vasanthakumar v. Vijayakumari

Judgment dated 28.04.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 728 of 2015, reported in 2015 CriLJ 2853 (SC)

Extracts from the Judgment:

In the present case since the cheque as well as the signature has been accepted by the accused respondent, the presumption under Section 139 would operate. Thus, the burden was on the accused to disprove the cheque or the existence of any legally recoverable debt or liability. To this effect, the accused has come up with a story that the cheque was given to the complainant long back in 1999 as a security to a loan; the loan was repaid but the complainant did not return the security cheque. According to the accused, it was that very cheque used by the complainant to implicate the accused. However, it may be noted that the cheque was dishonoured because the payment was stopped and not for any other reason. This implies that the accused had knowledge of the cheque being presented to the bank, or else how would the accused have instructed her banker to stop the payment. Thus, the story brought out by the accused is unworthy of credit, apart from being unsupported by any evidence.

Further, the High Court relied heavily on the printed date on the cheque. However, we are of the view that by itself, in absence of any other evidence, cannot be conclusive of the fact that the cheque was issued in 1999. The date of the cheque was as such 20/05/2006. The accused in her evidence brought out nothing to prove the debt of 1999 nor disprove the loan taken in 2006.

•

266. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Sections 138 and 141

Company was not made an accused and even demand notice was also not sent to it – But the accused, in his personal capacity, had drawn the cheque on a bank account maintained by him for paying the payee – Appeal against acquittal allowed – Hon’ble Apex Court awarded simple imprisonment for a period of five months to the accused and ordered to pay compensation of ` 1,48,400 to the complainant.

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 – धाराएं 138 और 141

कंपनी को एक अभियुक्त नहीं बनाया गया, यहां तक की उसे मांग सूचना पत्र भी नहीं भेजा गया – किन्तु अभियुक्त ने उसके द्वारा पोषित बैंक खाते से, व्यक्तिगत हैसियत में, चैक जारी किया जो कि पाने वाले को भुगतान के लिये था – दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील स्वीकार की – माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभियुक्त को 5 माह का साधारण कारावास और ` 1,48,400 रुपये परिवादी को प्रतिकर देने का आदेश दिया।

Mainuddin Abdul Sattar Shaikh v. Vijay D. Salvi

Judgment dated 06.07.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1472 of 2009, reported in 2015 (2) MPWN 139 (SC)

Extract from the Judgment:

About the liability under Section 138 of the NI Act, where the cheque drawn by the employee of the appellant company on his personal account, even if it be for discharging dues of the appellant-company and its Directors, the appellant-company and its Directors cannot be made liable under Section 138. Thus, we observe that in the abovementioned case, the personal liability was upheld and the Company and its Directors were absolved of the liability. The logic applied was that the Section itself makes the drawer liable and no other person. This Court in *P.J. Agro Tech Limited, P.J. Agro Tech Limited and others v. Water Base Limited* [(2010 12 SCC 146) noted as under:

“An action in respect of a criminal or a quasi-criminal provision has to be strictly construed in keeping with the provisions alleged to have been violated. The proceedings in such matters are in personam and cannot be used to foist an offence on some other person, who under the statute was not liable for the commission of such offence.”

Going by the strict interpretation of the provision the drawer which in the present case is the respondent is liable under Section 138 of the N.I. Act.

The Respondent has adduced the argument that in the complaint the appellant has not taken the averment that the accused was the person incharge of and responsible for the affairs of the Company. However, as the respondent was the Managing Director of M/s. Salvi Infrastructure Pvt. Ltd. and sole proprietor of M/s. Salvi Builders and Developers, there is no need of specific averment on the point. This Court has held in *National Small Industries Corporation Ltd. v. Harmeet Singh Paintal and Anr.*, (2010) 3 SCC 330 as follows:

Para 39 (v) "If the accused is a Managing Director or a Joint Managing Director then it is not necessary to make specific averment in the complaint and by virtue of their position they are liable to be proceeded with."

Thus, in the light of the position which the respondent in the present case held, we are of the view that the respondent be made liable under Section 138 of the NI Act, even though the Company had not been named in the notice or the complaint. There was no necessity for the appellant to prove that the said respondent was incharge of the affairs of the company, by virtue of the position he held. Thus, we hold that the respondent Vijay D Salvi is liable for the offence under Section 138 of the NI Act.

•

267. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Sections 138 and 141

Taking cognizance against Director of a company by Magistrate – Director/petitioner had neither signed the cheque in question nor there is allegation that the petitioner is the Managing Director (or Joint Managing Director) of the company – Even there is no allegation that she was in-charge and responsible for conduct of the business of the company at the relevant time – Magistrate has committed an error in taking cognizance of the offence under section 138 of N.I. Act against such petitioner/Director.

पराक्रम्य लिखित अधिनियम, 1881 – धाराएं 138 और 141

मजिस्ट्रेट द्वारा एक कंपनी के संचालक के विरुद्ध प्रसंज्ञान लेना – संचालक/ याचिकाकर्ता ने न तो प्रश्नगत चेक पर हस्ताक्षर किये थे न ही (परिवाद) में ऐसे अभिकथन थे कि वह कंपनी का प्रबंध संचालक (या संयुक्त प्रबंध संचालक) है – यहाँ तक कि ऐसे अभिकथन भी नहीं थे कि वह कंपनी के व्यापार के लिए सुसंगत समय पर प्रभारी व उत्तरदायी थी – मजिस्ट्रेट ने ऐसे याचिकाकर्ता/संचालक के विरुद्ध धारा 138 एन.आई.एक्ट के तहत प्रसंज्ञान लेने में भूल की है।

Sonali Thanawala (Smt.) v. M/s. Rahul Ginning Industries & ors.
Order dated 02.05.2014 passed by the High Court of M.P. in M.Cr.C. No. 1585 of 2009, reported in ILR (2014) MP 2739

Extracts from the Order:

It cannot be disputed that Section 141 is a penal provision creating vicarious liability and same must be strictly construed. The complaint should spell out as to how and in what manner the concerned respondent was in-charge of or was responsible to the accused company for the conduct of its business. A company may have a number of directors and to make any or all the directors as accused in a complaint merely on the basis of a statement that they are in-charge of an responsible for the conduct of the business of the company without anything more is not a sufficient or adequate fulfillment of the requirements under Section 141. (See: *National Small Industries Corporation Ltd. v. Harmeet Singh Paintal and Another*, reported in 2010 Cri.L.J. 1907).

It is also settled position in law that with a view to make a director of a company vicariously liable for the acts of the company, it is obligatory on the part of the complainant to make specific allegations as are required under the law and under Section 141 of the Act and that in absence of such specific averments in the complaint showing as to how and in what manner the director is liable, the complaint should not be entertained. (See *Saroj Kumar Poddar v. State (NCT of Delhi)*, reported in (2007) 3 SCC 693; *SMS Pharmaceuticals v. Neeta Bhalla and another*, reported in AIR 2005 SC 3512; and *Sabitha Ramamurthy v. R.B.S. Channabasavaradhya*, reported in AIR 2006 SC 3086.) It is also settled position in law that for launching a prosecution against the alleged directors, there must be a specific allegation in the complaint as to the part played by them in the transaction. (See: *N.K. Wahi v. Shekhar Singh & others*, reported in (2007) 9 SCC 481). It is also necessary to specifically aver in a complaint under Section 141 that at the time when the offence was committed, the person accused was in-charge of, and responsible for the conduct of the business of the company and that the vicarious liability was to be attributed only if the requisite statements which are required to be averred in the complaint petition are made so as to make the accused/director vicariously liable for the offence committed by the company. (See: *Ramraj Singh v. State of MP & another*, reported in (2009) 6 SCC 729).

•

268. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Sections 138 and 141

Whether notice under section 138 (b) of the N.I. Act is mandatorily required to be sent to the Directors of a Company before a complaint could be filed against such Directors along with the Company? Held, No – Individual notices to the Directors not necessary as it will make the summary remedy under section 138 wholly cumbersome.

पराक्रम्य लिखित अधिनियम, 1881 – धाराएं 138 और 141

क्या धारा 138 (बी) एन.आई. एक्ट का सूचनापत्र कंपनी के संचालकों को, कंपनी के साथ उनके विरुद्ध परिवाद पेश करने के पूर्व भेजना, आज्ञापक रूप से आवश्यक होता है ? अभिनिर्धारित किया गया, नहीं – संचालकों को व्यक्तिगत सूचना पत्र आवश्यक

नहीं होता है क्योंकि यह धारा 138 से संक्षिप्त रूप के उपचार को पूरी तरह दुर्वह (या कठिन) बना देगा।

Kirshna Texport & Capital Markets Ltd. v. Ila A. Agrawal and others

Judgment dated 06.05.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1220 of 2009, reported in AIR 2015 SC 2091

Extracts from the Judgment:

If the requirement that such individual notices to the directors must additionally be given is read into the concerned provisions, it will not only be against the plain meaning and construction of the provision but will make the remedy under Section 138 wholly cumbersome. In a given case the ordinary lapse or negligence on part of the Company could easily be rectified and amends could be made upon receipt of a notice under Section 138 by the Company. It would be unnecessary at that point to issue notices to all the directors, whose names the payee may not even be aware of at that stage. Under Second proviso to Section 138, the notice of demand has to be made within 30 days of the dishonour of cheque and the third proviso gives 15 days time to the drawer to make the payment of the amount and escape the penal consequences. Under clause (a) of Section 142, the complaint must be filed within one month of the date on which the cause of action arises under the third proviso to Section 138. Thus a complaint can be filed within the aggregate period of seventy five days from the dishonour, by which time a complainant can gather requisite information as regards names and other details as to who were in charge of and how they were responsible for the affairs of the Company. But if we accept the logic that has weighed with the High Court in the present case, such period gets reduced to 30 days only. Furthermore, unlike proviso to clause (b) of Section 142 of the Act, such period is non-extendable. The summary remedy created for the benefit of a drawee of a dishonoured cheque will thus be rendered completely cumbersome and capable of getting frustrated.

269. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Sections 138 and 142

- (i) **Whether the provisions of Section 5 of the Limitation Act are applicable to the complaint made under section 138 of the N.I. Act? Held, No – *Subodh S. Salaskar v. Jayprakash M. Shah, (2008) 13 SCC 689* referred.**
- (ii) **What is the proper stage for filing of an application for condonation of delay as per proviso to Section 142 (b) of the N.I. Act ? Held, it must be filed along with the complaint – Such application is not maintainable at subsequent stage i.e. after taking cognizance – If Magistrate took cognizance on the basis of time barred complaint, such defect cannot be rectified by filing an application for condonation of delay at later stage.**

पराक्रम्य लिखित अधिनियम, 1881 – धाराएं 138 और 142

- (i) क्या धारा 5 परिसीमा अधिनियम के प्रावधान धारा 138 एन.आई. एक्ट के अधीन परिवाद में लागू होते हैं ? अभिनिर्धारित किया गया नहीं – सुबोध एस. साल्सकर विरुद्ध जय प्रकाश एम. शाह, (2008) 13 एस.सी.सी. 689 रेफर किया।
- (ii) धारा 142 (बी) एन. आई. एक्ट के परंतुक के अनुसार विलंब क्षमा करने के लिये आवेदन प्रस्तुत करने का उचित प्रक्रम क्या है ? यह (आवेदन) परिवाद के साथ पेश होना चाहिये पश्चातवर्ती प्रक्रम पर अर्थात् प्रसंज्ञान ले लेने के बाद ऐसा आवेदन चलने योग्य नहीं होता है – यदि मजिस्ट्रेट ने समय बाधित परिवाद के आधार पर प्रसंज्ञान ले लिया हो तब ऐसी कमी को पश्चातवर्ती प्रक्रम पर विलंब क्षमा करने के लिये आवेदन प्रस्तुत करके पूर्ण नहीं किया जा सकता।

Keshav Chouhan v. Kiran Singh

Order dated 23.06.2014 passed by the High Court of M.P. in M.Cr.C. No. 1470 of 2013, reported in ILR (2014) MP 2744

Extracts from the Order:

Hon'ble Supreme Court in the case of *Subodh S. Salaskar v. Jayprakash M. Shah, (2008) 13 SCC 689* held as under : –

“Ex facie, it was barred by limitation. No application for condonation of delay was filed. No application for condonation of delay was otherwise maintainable. The provisions of the Act being special in nature, in terms thereof the jurisdiction of the court to take cognizance of an offence under section 138 of the Act was limited to the period of thirty days in terms of the proviso appended thereto. Parliament only with a view to obviate the aforementioned difficulties on the part of the complainant inserted proviso to clause (b) of Section 142 of the Act in 2002. It confers a jurisdiction upon the court to condone the delay. It is, therefore, a substantive provision and not a procedural one. The matter might have been different if the Magistrate could have exercised its jurisdiction either under Section 5 of the Limitation Act, 1963 or Section 473 of the Code of Criminal Procedure, 1976. The provisions of the said Acts are not applicable. In any event, no such application for condonation of delay was filed. If the proviso appended to clause (b) of Section 142 of the Act contained a substantive provisions and not a procedural one, it could not have been given a retrospective effect. A substantive law, as it is well settled, in absence of an express provision, cannot be given a retrospective effect or retroactive operation.”

Hon'ble Supreme Court in the recent judgment of *Econ Antri Ltd. v. Ram Industries Ltd., 2014 (1) JLL 1* while dealing computation of the period of Limitation for the purpose of complaint filed under the Act held as under: –

“As the limitation Act is held to be not applicable to N.I. Act drawing parallel from *Tarun Prasad Chatterjee* (supra) where the Limitation Act was held not applicable, we are of the opinion that with the aid of section 9 of the General Clauses Act, 1897 it can be safely concluded in the present case that while calculating the period of one month which is prescribed under Section 142(b) of the N.I. Act, the period has to be reckoned by excluding that date on which the cause of action arose. It is not possible to agree with the counsel for the respondents that use of the two different words ‘from’ and ‘of’ in section 138 at different places indicates the intention of the legislature to convey different meanings by the said works.”

Madras High Court has taken this view in the light of the judgment of Hon'ble Apex Court in the case of *Subodh S. Salaskar* (supra), therefore I am of the considered view that an application as per proviso to clause (b) of Section 142 of the Act must be filed along with complaint and such application is not maintainable at subsequent stage i.e. after taking the cognizance and if the Magistrate took cognizance on the basis of time barred complaint then this defect cannot be cured by filing an application for condonation of delay at later stage. Hon'ble Supreme Court in the case (sic:case) of *Subodh S. Salaskar* (supra) held that when a time barred complaint is filed under Section 138 of the Act and no application for condonation of delay was filed then a substantive right accrued in favour of accused, therefore the accused can raise the objection about the limitation at later stage.

•
***270. PREVENTION OF CORRUPTION ACT, 1988 – Sections 7, 13 (1) (d) r/w/s 13 (2)**

Almost all the facts alleged by the prosecution are admitted by the accused in his examination under section 313 of Cr.P.C. – He has taken a defence that the amount was received by him on account of repayment of loan which was given to the complainant by him prior to the date of the incident – Defence version was not found acceptable by the trial court as well as Hon'ble High Court – It was held by the High Court that if such evidence is accepted without any documentary proof in support of the alleged loan, it would be virtually impossible to held guilty of any bribe taker.

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 – धाराएं 7, 13(1) (d) और सहपठित धारा 13 (2)

अभियुक्त ने अभियोजन द्वारा अभिकथित लगभग सभी तथ्यों को उसके परीक्षण धारा 313 दं. प्र.सं. में स्वीकार कर लिया – उसने यह बचाव लिया कि उसने जो राशि प्राप्त की है वह ऋण के भुगतान के लिए है जो ऋण परिवादी को घटना दिनांक के पूर्व उसने दिया था – बचाव अभिकथन को विचारण न्यायालय और माननीय उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार योग्य नहीं पाया – उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसी साक्ष्य ऋण के समर्थन में बिना किसी दस्तावेजी प्रमाण के स्वीकार कर ली गई तो किसी भी रिश्त लेने वाले को दोषी निर्धारित करना लगभग असंभव हो जायेगा।

Dilip Sagorkar (Dead) Through L.R. v. State of M.P.

Judgment dated 21.08.2014 passed by the High Court of M.P. in Cr.A. No. 1109 of 2001, reported in ILR (2014) MP 2694 (DB)

271. PREVENTION OF CORRUPTION ACT, 1988 – Sections 7, 13 (1) (d) and 13 (2)

- (i) **When alleged previous enmity becomes immaterial in corruption cases? Held, where misconduct is duly proved by the prosecution then alleged enmity becomes immaterial.**
- (ii) **When demand, acceptance and recovery of tainted money from possession of accused is proved no preliminary inquiry could be made due to paucity of time – Plea of defence not found reliable – Presumption under section 20 of the Act stands unrebutted.**

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 – धाराएं 7, 13 (1) (डी) और 13 (2)

- (i) **कब अभिकथित पूर्व रंजिश भ्रष्टाचार के मामले में अतात्विक हो जाती है ? अभिनिर्धारित किया गया जहाँ अभियोजन द्वारा (अभियुक्त का) दुराचार सम्यक रूप से प्रमाणित कर दिया जाता है वहाँ अभिकथित पूर्व रंजिश अतात्विक हो जाती है।**
- (ii) **जब माँग, स्वीकारोक्ती और दूषित धन का अभियुक्त के आधिपत्य से बरामद होना प्रमाणित हो जाता है – समय की कमी के कारण कोई प्रारंभिक जाँच नहीं की जा सकी हो – बचाव का अभिवाक स्वीकार योग्य नहीं पाया जाता है – धारा 20 अधिनियम की उपधारणा अखंडित रहती है।**

Chaitanya Prakash Audichya v. C.B.I.

Judgment dated 01.07.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 697 of 2011, reported in 2015 (3) Crimes 72 (SC)

Extract from the Judgment:

In the present case the versions of PW1 and PW2 are completely consistent establishing the basic ingredients of demand and acceptance. The tainted currency notes were found on the person of the appellant. The explanation give by him soon after the incident through his letter dated 10.06.2003 is completely different from the theory put forth while the appellant examined himself as DW2. In our view, the demand and acceptance thus not only stand fully established but the presumption invocable under Section 20 of the Act also stood unrebutted.

The other two cases cited by the appellant dealt with situations where the demand and acceptance were not fully established and despite that an attempt was made to rely on the presumption invocable under Section 20 of the Act. Such is not the case in the present matter. It is further well established that where misconduct is proved, the alleged enmity between the complainant and the delinquent officer is immaterial. [See *B. Hanumantha Rao v. State of A.P., 1993 Supp. (1) SCC 323*].

③

***272. PREVENTION OF CORRUPTION ACT, 1988 – Sections 7, 13 (1) (d) r/w/s 13 (2) and 20**

EVIDENCE ACT, 1872 – Section 3

Appreciation of evidence – Statement of key witness PW 9 was recorded almost after three years of the incident – Cross-examination was not done on the same day – In his cross-examination he admitted that the amount was not demanded by him – There is nothing on record that if the amount was not demanded and the papers relating to post-retiral dues were being cleared by the accused, then as to why PW 9 made a written complaint to the Anti-Corruption Bureau on the same date when his sister’s papers were being cleared – There was every reason to believe that the witness had lost the interest and was won over by the accused – Held, acquittal of the accused rightly reversed by the High Court.

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 – धाराएं 7, 13 (1) (d) सहपठित धारा 13 (2) ए और 20

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 3

साक्ष्य का मूल्यांकन – मुख्य गवाह, अभियोजन साक्षी क्रमांक 9 का बयान घटना के लगभग तीन वर्ष बाद अभिलिखित किया गया था – उसी दिन उसका प्रतिपरीक्षण नहीं किया गया था – उसने प्रतिपरीक्षण में कहा कि अभियुक्त द्वारा धनराशि की मांग नहीं की गई थी – अभिलेख पर ऐसा कुछ नहीं था कि यदि धनराशि की मांग नहीं की गई थी व सेवानिवृत्ति के बकाया के कागजात अभियुक्त द्वारा निपटा दिये गये थे तो अभियोजन साक्षी क्रमांक 9 ने क्यों एंटी करप्शन ब्यूरो को लिखित शिकायत उसी दिन की जिस दिन उसकी बहन के कागजात अभियुक्त द्वारा निपटा दिये जाना (बतलाया

गया) था – यह विश्वास करने के कारण हैं कि गवाह की रूचि खत्म हो गई थी व उसे अभियुक्त द्वारा जीत लिया गया था – दोषमुक्ति उच्च न्यायालय द्वारा सही रूप से उलटी गई ऐसा अभिनिर्धारित किया गया।

Nayankumar Shivappa Wagahmare v. State of Maharashtra

Judgment dated 13.02.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No.1352 of 2009, reported in 2015 CriLJ 3422 (SC)

***273. PREVENTION OF CORRUPTION ACT, 1988 – Sections 7, 13 (1) (d) r/w/s 13 (2) and 20**

The tainted money was recovered from the possession of the accused – Immediate written explanation offered by him was that the alleged money was thrust into his pocket – During trial he did not stand by his earlier version and remained silent – Where the accused has not given any explanation that under what circumstances tainted money was found in his possession, presumption under section 20 of the Act of 1988 is not rebutted – Held, High Court rightly reversed the acquittal.

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 – धाराएं 7, 13 (1) (डी) सहपठित धारा 13 (2) और 20

दूषित धन अभियुक्त के आधिपत्य से बरामद हुआ – अभियुक्त द्वारा तत्काल दिया गया लिखित स्पष्टीकरण यह था कि धन उसकी जेब में डाला गया था – विचारण के दौरान वह उसके पूर्व कथन पर कायम नहीं रहा और मौन रहा – जहां अभियुक्त यह स्पष्टीकरण नहीं देता है कि किन परिस्थितियों में दूषित धन उसके आधिपत्य में पाया गया धारा 20 अधिनियम 1988 के अधीन उपधारणा खण्डित नहीं होती है – अभिनिर्धारित किय गया, उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति को सही रूप से उलटा है।

C. Chandrasekaraiah v. State of Karnataka

Judgment dated 13.04.2015 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 621 of 2013, reported in 2015 (2) Crimes 330 (SC)

274. PREVENTION OF CORRUPTION ACT, 1988 – Section 13 (1) (e) r/w/s 13 (2)

What is the meaning of “known sources of income”? It has two elements; firstly, the income must be received from a lawful source and secondly, the receipt of such income must have been intimated in accordance with the provisions of law, rules or orders for the time being, applicable to the public servant – Receipt by way of share in the partition of ancestral property, bequest under a will, advances from close relatives would come within the expression “known sources of income” if such receipts were duly intimated to

the authorities as prescribed – In this case, every amount received by the accused has been duly proved and intimated to the Government and reflected in the income-tax returns – Appeal allowed and accused acquitted.

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 – धाराएं 13 (1) (ई) सहपठित 13 (2)

“आय के ज्ञात स्रोत” का अर्थ क्या है ? इसके दो तत्व हैं प्रथम, आय वैध स्रोत से प्राप्त होना चाहिये दूसरा, ऐसी प्राप्ति की सूचना लोक सेवक पर तत्समय लागू होने वाली विधि के प्रावधान, नियम या आदेश के तहत दे दी गई हो – पैत्रक संपत्ति के विभाजन से प्राप्त अंश, विल से प्राप्त संपत्ति, निकट रिश्तेदारों से प्राप्त अग्रिम राशि आय के ज्ञात स्रोत शब्दावली में आती है यदि उसकी प्राप्ति की सूचना सम्यक रूप से विहित प्राधिकारी को दे दी गई हो – इस प्रकरण में अभियुक्त द्वारा प्राप्त प्रत्येक राशि सम्यक रूप से प्रमाणित की गई व शासन को उसकी सूचना दी गई तथा आयकर रिटर्न में उक्त राशि दर्शाई गई – अपील स्वीकार की गई अभियुक्त को दोषमुक्त किया गया।

Kedarilal v. State of M.P. and others

Judgment dated 23.03.2015 passed by the the Supreme Court in Civil. Appeal No. 782 of 2011, reported in 2015 (2) JLJ 171 (SC)

Extracts from the Judgment:

In the instant case, every single amount received by the appellant has been proved on record through the testimony of the witnesses and is also supported by contemporaneous documents and intimations to the Government. It is not the case that the receipts so projected were bogus or was part of a calculated device. The fact that these amounts were actually received from the sources so named is not in dispute. Furthermore, these amounts are well reflected in the Income Tax Returns filed by the appellant. In similar circumstances, the acquisitions being reflected in Income Tax Returns weighed with this court in granting relief to the public servant. In *M. Krishana Reddy v. State [(1992) 4 SCC 49]*. It was observed in Para 14 : –

“.....Therefore, on the face of these unassailable documents i.e. the wealth tax and income tax returns, we hold that the appellant is entitled to have a deduction of `56,240/- from the disproportionate assets of ` 2,37,842/-.”

Similarly in *D.S.P Chennai v. K. Ibasagarain, (2006) 1 SCC 420*, the fact that the money was treated in the hands of the wife of the public servant and that she was assessed by the Income Tax Department was taken note of while accepting the explanation given by the public servant.

If the amounts in question, which were duly intimated and are reflected in the Income Tax Return are thus deducted, the alleged disproportionate assets stand reduced to Rs. 37,605, which is less than 10 % of the income of the Appellant. In *Krishnanand v. State of Madhya Pradesh, (1977) 1 SCC 816* and in

M. Krishna Reddy (supra), this court had granted benefit to the public servants in similar circumstances. We respectfully follow said decisions.

275. SCHEDULED CASTES AND SCHEDULED TRIBES (PREVENTION OF ATROCITIES) ACT, 1989 – Section 3 (1) (x)

Mere utterance of word “kuriawale” without any intention – Offence under section 3(1)(x) of the SC/ST Act is not made out – (2008) 12 SCC 531, 2015 (2) MPWN 26 and ILR (2013) M.P. 2457 referred.

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम, 1989 – धारा 3(1)(ग)

शब्द “कुरिया वाले” का बिना किसी आशय के उच्चारण करने मात्र से धारा 3(1)(ग) अधिनियम, 1989 का अपराध नहीं बनेगा – (2008) 12 एस.सी.सी. 531, 2015 (2) एम.पी.डब्ल्यू.एन. 26 और आई.एल.आर. (2013) एम.पी. 2457 रेफर किये गये।

Komal Tyagi and another v. State of M.P. and another

Judgment dated 25.06.2015 passed by the High Court of M.P. in Criminal Revision No. 800 of 2014, reported in 2015 (2) MPWN 140

Extract from the Judgment:

It is further submitted by the petitioner’s learned counsel that only by uttering the words of caste during the course of abusing, no offence is made out under section 3 (1)(x) of the Special Act. To strengthen his arguments, learned counsel for the petitioners relied on the judgment rendered by Hon’ble apex Court in the matter of *Gorige Pentaiah v. State of Andhra Pradesh and others reported in, (2008) 12 SCC 531*, and the judgments rendered by this Court in the matter of *Abdul Tanveer Khan v. State of M.P. reported in, 2015 (II) MPWN 26 and Shankarlal v. State of M.P., reported in ILR (2013) M.P., 2457*

After taking into consideration the facts mentioned in the FIR, it is clear that nowhere it was mentioned that the complainant belongs to Scheduled Caste or Scheduled Tribe and the opposite party i.e. the petitioners don not belong to the Scheduled Caste or Tribe. Further, nowhere it has been mentioned in the FIR that accused has insulted the complainant with an intent to humiliate him only because of he being a member of scheduled caste or tribe in the public view. Merely utterance of word “Kuriawale” without any intention shall not make out the offence under section 3(1)(x) of the Special Act.

***276. SERVICE LAW:**

FUNDAMENTAL RULES – Rule 56 (3)

Compulsory retirement of a Government servant – All that is required for compulsorily retiring a Government servant, is the subjective satisfaction of Government that such compulsory retirement is in the public interest.

The principles of compulsory retirement reiterated:

- (i) An order of compulsory retirement is not a punishment. It implies no stigma nor any suggestion of misbehaviour.
- (ii) The order has to be passed by the Government on forming the opinion that it is in the public interest to retire a Government servant compulsorily. The order is passed on the subjective satisfaction of the Government.
- (iii) Principles of natural justice have no place in the context of an order of compulsory retirement. This does not mean that judicial scrutiny is excluded altogether. While the High Court or the Apex Court would not examine the matter as an appellate Court, they may interfere if they are satisfied that the order is passed (a) mala fide, or (b) that it is based on no evidence, or (c) that it is arbitrary in the sense that no reasonable person would form the requisite opinion on the given material in short; if it is found to be a perverse order.
- (iv) The Government (or the Review Committee, as the case may be) shall have to consider the entire record of service before taking a decision in the matter, of course attaching more importance to record of and performance during the later years. The record to be so considered would naturally include the entries in the confidential records/ character rolls, both favourable and adverse. If a government servant is promoted to a higher post notwithstanding the adverse remarks, such remarks lose their sting, more so, if the promotion is based upon merit (selection) and not upon seniority.
- (v) An order of compulsory retirement is not liable to be quashed by a Court merely on the showing that while passing it uncommunicated adverse remarks were also taken into consideration. That circumstance by itself cannot be a basis for interference.

सेवा संबंधि विधि :

मूलभूत नियम – नियम 56 (3)

एक शासकीय सेवक की अनिवार्य सेवानिवृत्ति – एक शासकीय सेवक को अनिवार्य सेवानिवृत्त करने के लिए शासन का यह व्यक्तिनिष्ठ संतोष होना आवश्यक होता है कि अनिवार्य सेवा निवृत्ति लोक हित में है।

अनिवार्य सेवा निवृत्ति के सिद्धांत पुनः बतलाये गये।

Shiv Kumari Gulhani (Smt.) & ors. v. District and Sessions Judge, Mandla

Order dated 02.02.2015 passed by the High Court of M.P. in W.P. No. 3398 of 2000, reported in 2015 (II) MPJR 279 (DB)

PART - IV
IMPORTANT CENTRAL/STATE ACTS & AMENDMENTS

THE NEGOTIABLE INSTRUMENTS (AMENDMENT)
ORDINANCE, 2015
No. 6 of 2015

New Delhi, the 15th June, 2015

Promulgated by the President in the Sixty-sixth Year of the Republic of India.

An Ordinance further to amend the Negotiable Instruments Act, 1881.

WHEREAS the Negotiable Instruments (Amendment) Bill, 2015 has been passed by the House of the People and is pending in the Council of States;

AND WHEREAS, Parliament is not in session and the President is satisfied that circumstances exist which render it necessary for him to take immediate action;

Now THEREFORE, in exercise of the powers conferred by clause (I) of article 123 of the

Constitution, the President is pleased to promulgate the following Ordinance:-

Short title and commencement.

1. (1) This Ordinance may be called the **Negotiable Instruments (Amendment) Ordinance, 2015**.
- (2) It shall come into force at once.

Amendment of section 6.

2. In the Negotiable Instruments Act, 1881 (hereinafter referred to as the principal Act of 1881), in section 6,-
 - (i) in Explanation I, for clause (a), the following clause shall be substituted, namely:-
 - (a) "a cheque in the electronic form" means a cheque drawn in electronic form by using any computer resource and signed in a secure system with digital signature (with or without biometrics signature) and asymmetric crypto system or with electronic signature, as the case may be;'
 - (ii) after Explanation II, the following Explanation shall be inserted, namely:-

'Explanation III – For the purposes of this section, the expressions "asymmetric crypto system", "computer resource", "digital signature", "electronic form" and "electronic signature" shall have the same meanings respectively assigned to them in the Information Technology Act, 2000.'

Amendment of section 142.

3. In the principal Act, section 142 shall be numbered as sub-section (f) thereof and after sub-section (1) as so numbered, the following sub-section shall be inserted, namely:-

“(2) The offence under section 138 shall be inquired into and tried only by a court within whose local jurisdiction,-

(a) if the cheque is delivered for collection through an account, the branch of the bank where the payee or holder in due course, as the case may be, maintains the account, is situated; or

(b) if the cheque is presented for payment by the payee or holder in due course otherwise through an account, the branch of the drawee bank where the drawer maintains the account, is situated.

Explanation.- For the purposes of clause (a), where a cheque is delivered for collection at any branch of the bank of the payee or holder in due course, then, the cheque shall be deemed to have been delivered to the branch of the bank in which the payee or holder in due course, as the case may be, maintains the account.”

Validation for transfer of pending cases.

4. In the principal Act, after section 142, the following section shall be inserted, namely:-

“142A. (1) Notwithstanding anything contained in the Code of Criminal Procedure, 1973 or any judgment, decree, order or directions of any court, all cases 2 of 1974. arising out of section 138 which were pending in any court, whether filed before it, or transferred to it, before the commencement of the Negotiable Instruments (Amendment) Ordinance, 2015 shall be transferred to the court having jurisdiction under sub-section (2) of section 142 as if that sub-section had been in force at all material times.

(2) Notwithstanding anything contained in sub-section (2) of section 142 or sub-section (1), where the payee or the holder in due course, as the case may be, has filed a complaint against the drawer of a cheque in the court having jurisdiction under sub-section (2) of section 142 or the case has been transferred to that court under sub-section (f), and such complaint is pending in that court, all subsequent complaints arising out of section 138 against the same drawer shall be filed before the same court irrespective of whether those cheques were delivered for collection or presented for payment within the territorial jurisdiction of that court.

(3) If, on the date of the commencement of the Negotiable Instruments (Amendment) Ordinance, 2015, more than one prosecution filed by the same payee or holder in due course, as the case may be, against the same drawer of cheques is pending before different courts, upon the said fact having been brought to the notice of the court, such court shall transfer the case to the court having jurisdiction under sub-section (2) of section 142 before which the first case was filed and is pending, as if that sub-section had been in force at all material times.”

PRANAB MUKHERJEE,
President

DR. MUKULITA VIJAYAWARGIYA,
Additional Secretary to the Government of India